रूपमती

[फ़याज़ हुसैन का प्रसिद्ध उर्दू उपन्यास]

अनुवादक

गुलशन नन्दा व ब्रजेन्द्र

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़ दिल्ली

प्रकाशक
एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज,
दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

द्वितीय संस्करण १९६२

मूल्य : चार रुपये

आवरण : द्वारकाधीश

मुद्रक
हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

ROOPMATI : GULSHAN & BRIJENDER Rs. 4.00

भारत की ऋतुओं में वर्षा ऋतु सबसे अलौकिक है। घनघोर-घटायें उमड़ के आती हैं और टूट के बरसती हैं। ताल और नदियाँ एक हो जाते हैं। दीवारों पर मखमली काई फूटती है। जंगल-पर्वत, धानी जोड़ा पहन लेते हैं। मिट्टी से भी सुगन्ध आने लगती है। कण-कण पर निखार आ जाता है। क्या पशु-पक्षी, क्या मानव, हर एक के मन में नई आकांक्षायें जन्म लेती हैं। नन्हीं-नन्हीं फुहार पड़ती हैं और पपीहे की 'पीहू-पीहू' से वियोग के मारों का जीवन पहाड़ बन जाता है। कोयल की कूक से हूक उठने लगती है और यौवन-मातियाँ मधुर स्वर में गुनगुना उठती हैं—

'झूला किन डारो रे अमरइयां......हाय किन डारो...'

यही ऋतु थी और 'तीज' का त्योहार। मालवा देश के एक हरे-भरे सुन्दर गाँव चाँदनगर में सावन ने डेरे डाल रखे थे। तालाब के किनारे सुन्दर युवतियों का झुरमुट लगा था। एक से एक बढ़-चढ़कर बनी-ठनी......हाथों में फूलों के कंगन, कानों में फूलों की बालियाँ और जूड़ों में फूलों के गजरे देखकर मेघराज भी बावरा हो रहा था। एक [illegible]ती जिसका सौन्दर्य चन्द्रमा को भी लजाये, साधारण, किन्तु उजले वस्त्र प[illegible], फूलों में लदी-फंदी; [illegible] की गति पर झुरमुट में खड़ी झूम-झूमकर गा रही [illegible]ी—

बलम परदेश कभी न जा
साजन जो मैं जानती प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत न कीजो कोय॥
बलम परदेस कभी न जा

गायिका का मधुर स्वर सुनने वालियों के मन को लुभा रहा था। स
:-चढ़ाव में एक विशेष माधुर्य था, जो मन मोह लेता था। हरी, कोम
सके सुन्दर पाँव यूँ थिरक रहे थे, जैसे झील के तल पर हवा के झो
पानी का बुलबुला इधर से उधर तैर रहा हो। प्रकृति के कण-कण
रंग बरस रहा था। सुनने वालियों की मदमाती आँखें अपने परदेसी
ल्पना में छलक पड़ीं। कुएँ की मुँडेर पर कुछ पानी भरने वाली वि
यह दृश्य देख रही थीं। एक ने दूसरी से कहा—

"गाँव-भर में रूपा से अच्छा तो कोई गाने वाला न होगा।"

दूसरी बोली, "चाचा ने गायन-विद्या सिखाने में लहू-पसीना भी तो
या है।"

तीसरी अनायास कह उठी, "और देखो! रंग-रूप भी क्या निकला
व ही रूपमती है।"

इधर यह बातें हो रही थीं और उधर गाँव में घर-घर से छन-छन
: आ रही थी, हँसी ठठोली हो रही थी, पकवान पक रहे थे।

एक बुड्ढा, खसखासी दाढ़ी, खिचड़ी बाल, घर के आँगन में हुक्के की
लगाये, टाँग पर टाँग धरे स्वयं ही धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रहा
ी ताल जब घुटने पर पड़ती तो साथ ही गर्दन भी हिचकोला खाती
छोटी दीवारें, फूस की नीची छत, सिर से पाँव तक कच्चा घर,
ुथरा, लिपा-पुता चंदन सा—सामने आँगन के एक ओर रसोई-घ
के तले उसी की आयु की एक स्त्री बैठी बर्तन माँज रही थी।
-माँजते वह स्वयं बुड़बुड़ाने लगी, 'इस रूपा ने तो मेरा कलेजा

"कब से गई हुई है ?" बुड्ढा सहसा चौंक कर बोला।

"बड़ी देर हो गई,"—बुढ़िया ने उत्तर दिया।

बुड्ढा बिगड़ कर बोला—"मैं कई बार कह चुका हूँ कि रूपा को अकेले
त निकलने दिया करो ; किन्तु तुम्हारे कान पर जूँ भी नहीं रेंगती।"

"ए है ! तो क्या हो गया ? गाँव की और बहू-बेटियाँ भी तो पानी भरने
ाती हैं।"

"मैं नहीं सुनता जी···आओ जाकर ले आओ,"—बुड्ढे ने फिर कड़क कर
हा !

"हाय ! मैं अकेली कहाँ-कहाँ मर रहूँ···तुम्हारे पाँव में क्या मेंहदी लगी
? तुम्हीं क्यों नहीं चले जाते ?"

बुड्ढा बुढ़िया को घूरने लगा, "तुम तो बहरी हो···सुनती नहीं हो ढोलक
और गाने की आवाज··· बस वहीं-कहीं होगी वह भी···मैं क्या लड़कियों में जाता
अच्छा लगता हूँ ?"

"हमको नहीं सुनता कुछ···यह तो तुम्हारे ही कान हैं, जो ढोलक पर
बजने लगते हैं।" बुड़बुड़ाती हुई बुढ़िया हाथों पर पानी डालकर उठी, अलगनी
से दुपट्टा खींचा और सिर पर डालकर बाहर निकल गई।

ढोलक और गाने के बोल निरन्तर सुनाई दे रहे थे 'बलम परदेस कभी न
जा।' पास पहुँचकर पुकारने लगी—"रूपा, रूपा···अरी ओ रूपा !"

गायिका युवती ने जब यह आवाजें सुनीं तो दाँतों तले जीभ दबा कर एका
एक चुप हो गई। झुरमुट का झुरमुट मुड़ कर देखने लगा। एक बोली, "उफ
चाची···"

चाची थी कि बिफरी हुई सिंहनी की भाँति चली आ रही थी। सब सहम गई
कि राम जाने क्या पहाड़ टूटे। किन्तु जब रूपा लड़कियों के झुरमुट से, निकलकर
सामने आई तो चाची का उबाल यूँ उतर गया मानो उठा ही न था। उसने
सस्नेह मुस्कराते हुए हल्की सी चपत रूपा के गाल पर लगाई और बाँह पकड़ कर
खींचते हुए बोली—"तोड़ डालूँ मुँह, खेल कूद से जी नहीं भरता, उधर तेरे
चाचा आकाश सिर पर उठाये हैं।"

चाची का यह परिवर्तन देखकर सब एक साथ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं रूपा प्यार से चाची से लिपट गई और उसके गले में बाँहें डालते हुए चंचलता मुँह बना कर बोली, "चाची, यह चुड़ैलें सब की सब चिमट गई—गाओ, गा गाओ···यह देखो, मटका तो मेरा भरा धरा है।"

"क्या करूँ···इस भरे मटके को···सिर पर दे मारूँ—अपने···बँदरि कहीं की··· चल उठा।"

रूपा घड़ा उठा कर चाची के पीछे-पीछे चल पड़ी। मुड़-मुड़कर सखियों व ओर हँस-हँस के देखती और हाथों से संकेत में कहती जा रही थी कि घड़ा र कर अभी आई।

पूर्वीय सभ्यता का यह अटल नियम था, कि जहाँ लड़का लड़की युवावस्था क पहुँचे, माता-पिता तो एक ओर, सम्बन्धी और पड़ोसी, यहाँ तक कि दूर की जान पहचान वाले भी उस पर ऐसी कड़ी दृष्टि रखने लग जाते थे मानो वह को निधी हो। हर व्यक्ति उसे हर वास्तविक अथवा कल्पित आपत्ति से बचाना केव अपना ही कर्त्तव्य समझता······इन्हीं नियमों के आधार पर यहाँ व्यक्तित ढलते रहे, जीवन बनते रहे।

अब दुनिया वालों को क्योंकर विश्वास दिलाया जाये कि मानव की य भावनायें तो जन्म-जन्म से चलती आती हैं। वह वर्तमान समय की देन नहीं··

तनी व्याकुल नहीं, आँख पहले भी चंचल थी, परन्तु इतनी निडर नहीं, उ
छ संकोच था, लज्जा थी······चितवन पहले भी नटखट था। किन्तु निलं
हीं। यह परिवर्तन किसलिये? इसका कारण केवल यह है कि हमारे आच
ा लक्ष्य बदल गया है, उसकी सीमायें बदल गई हैं। अब किसी अन्य व्य
ो क्या मजाल कि कुछ कह सके। माता-पिता की रोक-टोक भी स्वतन्त्रता
स्तक्षेप समझी जाती है। इस युग का हर व्यक्ति अपनी इच्छाओं और व
ाओं को अपने ही उचित अथवा अनुचित ढंग से पूरा करना अपना अधिक
मझता है।

उस समय के उच्च और शिष्ट लोगों का तो क्या कहना, यह गायिकायें अ
र्तकियाँ, जिनका कार्य केवल रंगशालाओं को गरमाना और अमीरों, वज़
मन को भरमाना ही था, वह भी मृदुभाषी होने और बेगमों रानियों से र
बाव के कारण सम्मान से देखी जाती थीं। भरी सभाओं में उन पर, आवा
सना तो एक ओर, किसी को आँख उठाकर देखने का भी साहस न होता थ
च्च-घरानों की महिलायें उनसे उठने-बैठने, बोलने-चालने की शिक्षा लेतीं
ाष्ट व्यवहार सीखती थीं। उनकी तुलना यदि आजकल के शिक्षित अ
भ्य समाज के क्लब घरों से की जाये तो ऐसी आँधियाँ उठती दिखाई दें
ाँख इस दृश्य को सहन न कर सके।

रूपमती, इसी युग के उपवन का पुष्प थी, चाचा-चाची तो अलग रहे, ग
र के वृद्ध स्त्री-पुरुष उसके उठते यौवन की बहार देखकर काँप उठते। सबक
ही इच्छा थी कि शीघ्र ही उसके हाथ पीले कर दिये जायें। कोई अच्छा व
ोजकर माँग भर दी जाये। गाँव के नाई गंगू को वर खोजने का भार सौं
था। इस बात का महत्व एक घटना से अधिक हो गया था। बात यूँ हुई वि
ांव के चौधरी का बड़ा बेटा बड़े समय से रूपमती पर आँख लगाये था। दि
ति-दिन उसकी कुवासनायें तीव्र होती जा रही थीं, किन्तु रूपमती को टोक
ा साहस न होता था।

एक दिन दुर्भाग्यवश रूपमती कुएँ पर पानी भरने गई तो वहाँ कोई औ
री न थी। उसने दोनों घड़े तो भर लिये, किन्तु उठवाये किससे? इधर

चाची का यह परिवर्तन देखकर सब एक साथ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं
रूपा प्यार से चाची से लिपट गई और उसके गले में बाँहें डालते हुए चंचलता से
मुँह बना कर बोली, "चाची, यह चुड़ैलें सब की सब चिमट गईं—गाओ, गाओ
गाओ···यह देखो, मटका तो मेरा भरा धरा है।"

"क्या करूँ···इस भरे मटके को···सिर पर दे मारूँ—अपने···बँदरिया
कहीं की··· चल उठा।"

रूपा घड़ा उठा कर चाची के पीछे-पीछे चल पड़ी। मुड़-मुड़कर सखियों की
ओर हँस-हँस के देखती और हाथों से संकेत में कहती जा रही थी कि घड़ा रख
कर अभी आई।

२

पूर्वीय सभ्यता का यह अटल नियम था, कि जहाँ लड़का लड़की युवावस्था को
पहुँचे, माता-पिता तो एक ओर, सम्बन्धी और पड़ोसी; यहाँ तक कि दूर की जान-
पहचान वाले भी उस पर ऐसी कड़ी दृष्टि रखने लग जाते थे मानो वह कोई
निधी हो। हर व्यक्ति उसे हर वास्तविक अथवा कल्पित आपत्ति से बचाना केवल
अपना ही कर्त्तव्य समझता······इन्हीं नियमों के आधार पर यहाँ व्यक्तित्व
ढलते रहे, जीवन बनते रहे।

अब दुनिया वालों को क्योंकर विश्वास दिलाया जाये कि मानव की यह
भावनायें तो जन्म-जन्म से चलती आती हैं। वह वर्तमान समय की देन नहीं···
···यौवन में उन्माद पहले भी था, परन्तु इतनी बेसुधि नहीं······'पाप की भूल'
पहले भी थी, किन्तु इतनी खुले मुँह नहीं······आकांक्षायें पहले भी थीं, पर

तनी व्याकुल नहीं, आँख पहले भी चंचल थी, परन्तु इतनी निडर नहीं, उसमे
कुछ संकोच था, लज्जा थी......चितवन पहले भी नटखट था। किन्तु निर्लज्ज
नहीं। यह परिवर्तन किसलिये ? इसका कारण केवल यह है कि हमारे आचरण
का लक्ष्य बदल गया है, उसकी सीमायें बदल गई हैं। अब किसी अन्य व्यक्ति
की क्या मजाल कि कुछ कह सके। माता-पिता की रोक-टोक भी स्वतन्त्रता में
हस्तक्षेप समझी जाती है। इस युग का हर व्यक्ति अपनी इच्छाओं और वास-
नाओं को अपने ही उचित अथवा अनुचित ढंग से पूरा करना अपना अधिकार
समझता है।

उस समय के उच्च और शिष्ट लोगों का तो क्या कहना, यह गायिकायें और
नर्तकियाँ, जिनका कार्य केवल रंगशालाओं को गरमाना और अमीरों, वज़ीरों
के मन को भरमाना ही था, वह भी मृदुभाषी होने और बेगमों रानियों से रख-
रखाव के कारण सम्मान से देखी जाती थीं। भरी सभाओं में उन पर, आवाजें
कसना तो एक ओर, किसी को आँख उठाकर देखने का भी साहस न होता था
उच्च-घरानों की महिलायें उनसे उठने-बैठने, बोलने-चालने की शिक्षा लेती थीं
शिष्ट व्यवहार सीखती थीं। उनकी तुलना यदि आजकल के शिक्षित और
सभ्य समाज के क्लब घरों से की जाये तो ऐसी आँधियाँ उठती दिखाई दें कि
आँख इस दृश्य को सहन न कर सके।

रूपमती, इसी युग के उपवन का पुष्प थी, चाचा-चाची तो अलग रहे, गाँव
भर के वृद्ध स्त्री-पुरुष उसके उठते यौवन की बहार देखकर काँप उठते। सबकी
यही इच्छा थी कि शीघ्र ही उसके हाथ पीले कर दिये जायें। कोई अच्छा वर
खोजकर माँग भर दी जाये। गाँव के नाई गंगू को वर खोजने का भार सौंपा
गया। इस बात का महत्त्व एक घटना से अधिक हो गया था। बात यूँ हुई कि
गाँव के चौधरी का बड़ा बेटा बड़े समय से रूपमती पर आँख लगाये था। दिन
प्रति-दिन उसकी कुवासनायें तीव्र होती जा रही थीं, किन्तु रूपमती को टोकने

धर देख रही थी कि चौधरी का बेटा वहाँ आ पहुँचा । अभी तक उसे रूपमत
अकेले में मिलने का अवसर न मिला था । रूपमती उसकी कुदृष्टि को पहर
भाँपे हुए थी । उसे आता देखकर आँखें चुराकर खड़ी हो गई और कोई ध्या
दिया । चौधरी के बेटे ने बात-चीत आरम्भ करनी चाही, किन्तु रूपमती ने
ह न खोला और चुप रही, ढीठ बनकर उसने कहा, "आओ घड़े उठवा दूँ ।"
रूपमती जब घड़े उठाकर चलने लगी तो उसने हाथ बढ़ाने का कुछ साहस
या । रूपमती को यह सहन न हुआ और वह घड़े सिर से उठाकर रोती
गाँव को भागी । इस घटना से सारे गाँव में खलबली मच गई । चौधरी जब
ों से घर को लौटा तो सारा माजरा सुनकर आग-बबूला हो गया । लड़के
लाठियों से पीट-पीटकर बेसुध कर दिया और चाचा-चाची से गिड़गिड़ाकर
। याचना की ।

चाचा-चाची के पास रूपा के दहेज के लिये फूटी-कौड़ी न थी और यह
ा। दिन-रात उन्हें घुन बनकर खाये जा रही थी । मन न चाहता था कि
। बालिका को, जान छिड़ककर, सन्तान से बढ़कर, छाती से लगाकर पाला
बड़ा किया हो, उसे यूँ खाली हाथों विदा कर दें । सो गाँव के चौधरी से
मर्श करने पर यह ठहरा कि दोनों गाँव के सेठ के पास नगर चलें और व्या
लये कुछ पूँजी की प्रार्थना करें ।

इस योजना का ज्ञान चौधरी के बेटे को भी हो गया । अपनी असफलत
वह पहले ही जला-भुना बैठा था । तुरन्त एक काम का बहाना बनाकर नग
उठ दौड़ा । आवभगत के पश्चात् सेठ ने आने का कारण पूछा । वह बोला
ले में कुछ बातें करनी हैं ।" सेठ आश्चर्यचकित हो उसे भीतर ले गया ।

सेठ—"पहले तो यह बताओ कि गाँव में सब कुशल तो है न ? तुम्हार
प्रकार आना कुछ विचित्र सा लगता है ।"

चौधरी का बेटा—"हाँ, कुशल है और नहीं भी ।"

सेठ घबरा-सा गया और बोला, "चौधरी, पहेलियों में बात न करो, खुल

सेठ—"गाँव में किसको नहीं जानता ? रात-दिन का आना-जाना हो तो आँखों से कौन ओझल रह सकता है।"

चौधरी का बेटा—"मैं पूछता हूँ, रूपा को भी जानते हो ? कभी उसको देखा है ? कभी आमना-सामना हुआ है।"

सेठ—"हाँ, हाँ ! भली प्रकार जानता हूँ···हज़ार बार देखा है···हज़ार बार सामना हुआ है···तुम अपना अभिप्राय कहो !"

चौधरी का बेटा सेठ के पाँव में गिर पड़ा और बोला—"मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।"

सेठ ने हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा—"पागलों की सी बातें मत करो···ठीक-ठीक बताओ क्या बात है ?"

चौधरी का बेटा लड़खड़ाती हुई ज़बान में कहने लगा—"वास्तव में बात यह है कि मैं रूपा से प्रेम करता हूँ···कुछ दिन हुए मैंने उससे बात करना चाही तो उसने गाँव भर में शोर मचाकर मुझे बदनाम कर दिया।"

चौधरी के बेटे ने तो बहुत कुछ बात बनाकर कही ; किन्तु सेठ सयाना था, तुरन्त ताड़ गया कि इसने अवश्य कुछ ऐसी बात की होगी जिससे कोई भी सभ्य स्त्री सहन नहीं कर सकती। चौधरी के बेटे को समझाते हुए उसने उत्तर दिया—"चौधरी ! गाँव की बहू-बेटियों को कुदृष्टि से देखना बड़ी नीचता है। तुम ऊँचे घराने और आदरणीय पिता के सुपुत्र हो। तुम्हारी बात सुनकर मुझे खेद ही हुआ। ऐसी बातों का यही परिणाम होना चाहिये था। अच्छा तो यह बताओ मेरे पास तुम आये किस अभिप्राय से ?"

सेठ के इन शब्दों से चौधरी के बेटे पर ओस-सी पड़ गई और खिसियाना सा होकर इधर-उधर देखने लगा।

सेठ ने फिर कहा—"हाँ, हाँ, बताओ मुझसे क्या चाहते हो ?"

चौधरी का बेटा रुक-रुककर बोला—"मेरे पिता और रूपा के चाचा ने यह निश्चय किया है कि शीघ्र ही रूपा का लगन कर दिया जाये और वह दोनों कुछ रुपये-पैसे की माँग लेकर तुम्हारे पास आयेंगे। मैं चाहता हूँ कि तुम उन्हें टाल दो और अभी रुपया न दो। इस प्रकार जब कुछ दिन के लिये बात टली

चौधरी का बेटा—"यह कि मुझसे रूपा का व्याह कर दें ।"
सेठ—"तो क्या अभी तक उसका नाता कहीं नहीं हुआ ।"
चौधरी का बेटा—"नहीं..."
सेठ—"तो फिर व्याह के लिये रुपया देने का अभी प्रश्न ही नहीं उठ
चौधरी का बेटा—"किन्तु वह तुम्हारे पास यही प्रार्थना लेकर आ
सेठ—"क्या भोलेपन की बातें करते हो । जब तक मँगनी न हो जाये,
से होगा ?"
चौधरी का बेटा—"मँगनी समझो हो जायेगी । गंगू से कह दिया गया
सेठ—"तो देखा जायेगा, जब मँगनी हो चुकेगी ।"
चौधरी का बेटा—"परन्तु तुम यह वचन तो दो कि तुम उन्हें इस का
रुपया न दोगे ।"
सेठ—"सुनो चौधरी ! मुझ से यह तो न होगा कि वह मेरे पास आयें
हें टाल दूँ । जब गाँव में सब को देता हूँ तो उन्हें क्यों न दूँ ? वह
हैं ? दूसरे यह मेरे धंधे और नियमों के विरुध है कि मैं अकारण ही अ
ों से बिगाड़ लूँ । तीसरे यह कि किसी की जवान बेटी के ब्याह में रोड़े अ
बड़ा पाप है । ऐसे पुण्य के कार्यों में तो सौ पराये की भी सहायता क
ानव का कर्त्तव्य है और फिर मेरा देना-लेना तो सूद-व्याज का देना-ले
तो किसी प्रकार भी उपकार नहीं कहा जा सकता । यदि मैं इससे
काटूँ, तो मुझ से बढ़कर पापी कौन होगा ? मैं तुम्हारी यह सहायता क
ा हूँ कि जब वह मेरे पास आयें तो मैं तुम्हारे पिता को यह पराम
यह नाता तुम्हारे लिये लेने का प्रयत्न करे ।"
द्यपि चौधरी के बेटे को सेठ की ओर से संतोषजनक उत्तर न मिल
ा इतना तो हुआ कि सेठ ने उसके नाते के प्रयत्न का वचन दे दिया, औ
लिए इतना ही पर्याप्त था । सेठ का धन्यवाद करते हुए वह बोला—"अच्छ
ह वचन पक्का रहा सेठ जी ?"

5 जी ने उसे सांत्वना देते हुए उत्तर दिया, "अवश्य···और विश्वास रखो
ा छिपी न रहेगी···तुम्हें सब स्वयं पता चल जायेगा।"

ानव का शरीर, जो देखने में केवल माँस और हड्डियों का एक ढाँचा स
अनोखे और विचित्र भावों का सन्दूकचा है। एक छोटा सा माँस का लोथड़ा
दय कहते हैं, इसकी अथाह गहराइयों की कोई सीमा नहीं। कभी-कभा
क कोई भावना इसमें छिपी दबी पड़ी रहती है, और फिर सहसा किसं
ारण से वह भावना उजागर हो जाती है, और यूँ उभरती है कि लाख
रने पर भी इसको दबाना असम्भव हो जाता है; और मानव-प्रकृति विवः
रह जाती है।

ौधरी के बेटे के चले जाने के पश्चात् यही दशा सेठ की भी हुई। उसकं
त्नी ढाई वर्ष हुए, छः महीने की एक बच्ची छोड़कर मर गई थी। दूर
के सम्बन्धियों में कोई ऐसा न मिला जो इस बच्ची को सँभालता। इस
ाठ ने इसके लालन-पालन के लिए नौकरानी रख ली, जो बच्ची को भं
और सेठ का खाना-वाना भी पकाती। इस बीच में काम-काज में लगे
5 कारण सेठ को नये विवाह का कभी विचार भी न आया। परन्तु, अब
ई प्रेरणा ने एकाएक उसकी सोई हुई भावना को जगा दिया और उसे यं
ा हुआ मानो कोई चिंगारी राख के ढेर के नीचे दबी पड़ी थी कि अचानक
ने राख को कुरेदा और वह धधक कर अंगार बन गई।

ांद नगर में उसका निशदिन आना-जाना लगा रहता था। रूपा को सैकड़ो
उसने आते-जाते, चलते-फिरते देखा था और कभी मन में किसी प्रकार का
ाभी उत्पन्न न हुआ था, किन्तु आज उसे यूँ अनुभव होने लगा जैसे रूपा
से उसके मन की रानी थी, उसके मन-मस्तिष्क पर छाई हुई थी, उसकी
ा में बसी हुई थी। यह विचार आना था कि वह सिर पकड़ के बैठ गया।
नन्हीं सी बच्ची का ध्यान आया कि उसकी माँ अब रूपा से बढ़कर कौन
ती है···उससे अधिक उसे कौन प्यार कर सकता है···रूपा का अपना
ा-पालन भी तो ऐसे ही वातावरण में हुआ है···बिचारी के न माता न पिता
न दुःख को भली प्रकार समझती है···रूपा सौन्दर्य की मूर्ति है, रूपा पवित्रत

की देवी है···ऐसी···ऐसी निष्कलंक कि निर्धन होने पर भी गाँव के मुखिया के बेटे को धत्कार दिया···रूपा से बढ़कर संसार में पवित्र कोई स्त्री नहीं हो सकती···वह व्यक्ति वास्तव में बड़ा भाग्यशाली होगा जिसे रूपा जैसी पत्नी मिले। यह थे वह विचार जो सहसा ज्वर की भाँति उसके मस्तिष्क में उठे और उसे बहाकर ले गये।

आँगन में चाचा चारपाई पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था। बाहर से रूपा गुनगुनाती हुई आई और उसके पास बैठकर पूछने लगी, "चाचा! बिहाग, शंकरा और सोहनी, दीपकराग की शाखायें कही जाती हैं किन्तु, दीपक आज तक नहीं सुना।"

चाचा—"हाँ, यही कहा जाता है यह उसकी शाखायें हैं।"

रूपा—"किन्तु, दीपक···"

चाचा कुछ देर सोचकर बोला—"होगा···मैं तो नहीं जानता···तुमने भी सुना ···। अभी पिछले दिनों यह बात प्रसिद्ध हुई थी कि मियाँ तानसेन ने अकबर ···शाह की बीमार राजकुमारी को, जिसके इलाज से सब राज-वैद्य और हकीम ···थ धो चुके थे, दीपकराग सुनाकर अच्छा कर दिया था। किन्तु वह स्वयं उस ···ग के प्रभाव से बीमार पड़ गया और ऐसा ताप चढ़ा कि उसका उतारना किसी ···ीम के बस की बात न रही।"

रूपा झट बोल उठी—"फिर?"

चाचा—"फिर मियाँ तानसेन ने स्वयं यह बात कही कि जब तक मेघ-मल्हार गाया जायेगा ताप न उतरेगा।"

रूपा फिर अधीर हो बोली—"फिर?"

चाचा—"फिर तानी बुलाई गई या स्वयं तानसेन को उसके यहाँ पहुँचाया ···ा। उसने मेघ-मल्हार गाया और तब कहीं तानसेन का ताप उतरा।"

चाचा हँस पड़ा और कोई उत्तर न दिया।

रूपा कुछ रुककर फिर बोली—"मेघ-मल्हार राग को तो मैं भी जानती हूँ··· रन्तु यह प्रभाव वाली बात तो चाचा, मैंने आज ही तुम्हारे मुँह से सुनी।"

चाचा फिर हँसा और कहने लगा—"सच यह है कि लोगों ने बहुत सी कल्पित हानियाँ घड़ ली हैं, जिनमें वास्तविकता बिल्कुल ही छिप गई है···जैसे दीपक-ाग के विषय में यह कहते हैं कि उसके प्रभाव से आग लग जाती है, अथवा ीपक स्वयं जल उठते हैं···और मेघ-मल्हार से वर्षा होने लगती है···यह सब यर्थ की बातें हैं और केवल कल्पना की उड़ान है, वास्तविक राग से उसका क़ोई म्बन्ध नहीं।"

रूपा—"तो क्या मियाँ तानसेन वाली बात झूठ है?"

चाचा—"बिल्कुल झूठ। किसी साधारण घटना को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में, उसमें रंग भरने में जन साधारण को एक विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है··· वह हर घटना को एक चमत्कार बना देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मियाँ तानसेन बड़ा कलावंत है और यह कहना मिथ्या न होगा कि हज़ार वर्ष से ऐसा रागी भारत में नहीं जन्मा। किन्तु मैं उसके चमत्कार को नहीं मानता। मेरा विचार है मियाँ तानसेन ने स्वयं ऐसा कभी नहीं सोचा।"

रूपा—"तो क्या राग के प्रभाव में कोई वास्तविकता नहीं?"

चाचा—"है···किन्तु इस प्रकार नहीं जैसे लोगों ने प्रसिद्ध कर रखा है।"

रूपा—"फिर कैसे?"

चाचा—"देखो, सुनो! तनिक समझने की बात है···इस ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा, सूर्य और तारे सभी भगवान् की उत्पत्ति हैं। इनमें कोई छोटा है, कोई बड़ा··· कुछ ग्रह अपने स्थान पर स्थिर हैं और कुछ जो गतिमान हैं। यूँ तो यह गतिमान ग्रह अगणित हैं और इनके चक्र निश्चित समय पर समाप्त हो जायेंगे, किन्तु सात ग्रह ऐसे हैं जो दिन-रात के आठ पहरों में अपने चक्र पूरे समाप्त कर जाते हैं···और यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु की तनिक सी हलचल से भी ···वायु द्वारा रगड़ से ध्वनि उत्पन्न होती है···हिन्दुस्तान के रागियों ने इन्हीं ग्रहों की गति से जो इनके छोटे-बड़े होने के कारण धीमी अथवा तीव्र है, 'सरगम' की नीं—

है और इसी के आधार पर विभिन्न रागों के समय निश्चित किये हैं...यही कार
है कि हर राग एक निश्चित समय पर मन में विशेष भावनायें जागृत करता
और इसी का नाम है राग का प्रभाव...इस विशेष राग के सुर उसी ध्वनि
साथ मिलते हैं जो उस समय इन सात ग्रहों की गति से उत्पन्न होती है।"

रूपा—"ठीक है, समझ गई, परन्तु यह बात अब तक बुद्धि में नहीं बैठी
इन सात ग्रहों की ध्वनियाँ सुनी कैसे गई।"

चाचा—"तुमने बड़ा उचित प्रश्न किया है...सुनो! संगीत और ज्योति
ऐसी विद्यायें हैं कि आरम्भ में उन्हें समझना तो एक ओर, साधारण बुद्धि
व्यक्ति उनके शब्दों के अर्थ तक को नहीं पहुँच पाते। यह वह विशेष ज्ञान
जिनकी नींव स्वयं देवताओं ने रखी है...अवतारों और पैग़म्बरों ने इन्हें परवान
चढ़ाया है और वह भगवान की दी हुई असाधारण शक्तियों के स्वामी थे कि
इन ध्वनियों को सुन सकते थे। वैसे यह तर्क भी दिया जा सकता है कि आका
मण्डल को प्रकृति ने बारह राशियों में विभाजित किया है और जैसे दुनियाँ वाल
इन्हीं राशियों की संख्या के आधार पर वर्ष को बारह मासों में बाँटकर धरत
र समय को निश्चित किया है और ऋतुओं के अदल-बदल के समय निर्धारित
किये हैं ऐसे ही इन सात-ग्रहों की परिक्रमा की अवधि के अनुपात से इनकी गति
ा अनुमान लगाया गया है और इनकी क्रिया से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का
ो ज्ञान हुआ है, परन्तु इस विषय में मेरा अपना विश्वास वही है जो मैं पहले
ता चुका हूँ और इसी को मैं सत्य मानता हूँ।"

अभी यह बातचीत चल ही रही थी कि चाची भीतर से गरजती हुई निकली
ौर चाचा पर बरस पड़ी, "मैं कहती हूँ, तुम पागल हो जाओगे। आकाश की
ातें छोड़कर कभी धरती की बातें भी किया करो...बस सदा एक ही झक-झक,
भी दुनियाँ का कोई काम करना न जाना।"

चाचा, दम साधे चाची का मुँह ताकने लगा और रूपा गर्दन घुमाकर हँसी
ो रोकते हुए साड़ी का आँचल मुंह में ठूँसकर बैठकर गई। चाची लगातार कहे
ा रही थी, "ए, मैं कहती हूँ इधर को क्या ताक रहे हो? उठो, चौधरी के पास
ाओ, आज कै दिन की बात हो गई। उसने नगर चलने को कहा था पर

मने फिर हट कर सुध ही न ली···क्या दुनियाँ के काम यूँ होते हैं ?"

चाचा ने कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि चाची फिर बोल उठी—"बस, मैं कुछ नहीं सुनना चाहती, उठो और चौधरी के पास जाओ।"

रूपा हँसी को अधिक न रोक सकी। उठी और झुकी-झुकी बाहर की ओ ागी। चाचा को छोड़कर चाची उसको लिपट गई—"सुन री—यह मुँह तो ालूँगी तेरा, जिससे खिद-खिद हँसे जा रही है। तुझे इतनी बुद्धि नहीं कि चम ो ससुराल मे आये आज तीन दिन हो गये, उससे मिल तो आती। यहाँ ारा कौन सा काज सँवारती है कि अवकाश नहीं मिलता···बस यहाँ बैठी गु ;नाती रहती है या चाचा से व्यर्थ इधर-उधर की बातें करती है। ए है य ैसा कलयुग आ गया, प्यारी सखियों से यह बरताव···वह क्या सोचती हो ान में और हाँ देखो···भांजे के लिये मिठाई लेकर जाइयो—"

एक ही साँस में यह सब कुछ कह कर चाची का क्रोध ठंडा पड़ गया औ ाचा को सम्बोधन करते हुए बोली, "रूपा के चाचा ! अपनी ऐड़ी देखूँ, कित यारा बच्चा है, जीता रहे, मैं कहती हूँ, तुम यहाँ पड़े क्या करते हो ? जाओ ंम्पा के सिर पर हाथ फेर आओ, बच्चे को तो मैं एक रुपया दे आई हूं।"

चाचा कहते हुए उठ खड़ा हुआ—"लो अभी जाता हूँ। नहीं तो फि भूल जाऊँगा।" चाची को फिर पहली बात याद आ गई और कड़कक ोली—"और मैं कहती हूँ चौधरी की ओर कब जाओगे ?"

चाचा मुस्कुराने लगा और उसकी ओर देखकर नम्रता से बोला—"भल मानस ! चौधरी कहीं गांव गया हुआ है—एक दो दिन में आ जायेगा औ सम्भव है कि आज ही आ जाये।"

चाची का पारा यद्यपि उतर गया था; किन्तु फिर भी इतना कह गई "अच्छा तुम जानो, पर देखो मैं तुम्हें चैन न लेने दूंगी।"

चाचा हँसता हुआ बाहर चला गया।

. पौ फट चुकी थी, अभी सूर्य उदय न हुआ था। सेठ बिस्तर
कोठे की छत पर टहलता फिर रहा था कि चाँदनगर की सड़क पर
दिखाई दी। सेठ की दृष्टि उधर ही जम गई; हवा के झोंके ने धूल
को परे हटाया तो दो सवारों की झलक पड़ी, किन्तु तुरन्त ही धूल ने
ोट में ले लिया। सेठ की दृष्टि, निरन्तर उस धूल पर जमी रही।
उड़ान से इतना अनुमान तो लगाया जा सकता था कि सवार घोड़ों को
लये आ रहे हैं, किन्तु दिखाई कुछ न पड़ता था कि फिर एक तीव्र
धूल को हटा दिया। इस बीच में सवार और भी निकट पहुँच चुके
। चौधरी और चाचा को तुरन्त पहिचान लिया। मन, धक से ह
गया। शीघ्र नीचे उतरा। कली को ताज़ा किया, चिलम में आग र
नौकरानी को लस्सी बनाकर तैयार रखने का आदेश देकर बैठक में ग
। पीठ लगाकर बैठ गया।

थोड़ा ही समय बीता था कि गली में घोड़ों की टाप सुनाई दी और
और चाचा आन विराजे। सेठ ने सन्तोष की लम्बी साँस ली और हँस
बाहर निकल कर कहने लगा—"आइये, आइये। बड़े दिनों बाद दर्शन
अरे ओ फ़ज्जा, घोड़े थाम।" फ़ज्जा ने शीघ्र आकर घोड़े थाम लिये अ
तीनों बैठक में आकर बैठ गये, नौकरानी आई और एक तसली लस्सी की
तीन गिलास रखकर भीतर चली गई। कुशलता पूछने और लस्सी पि
बाद सेठ ने अतिथियों के आने का कारण पूछना चाहा, पर झिझक क

चौधरी—"आज तो हम सवेरे ही सवेरे एक विशेष कार्य से आये हैं तुम्हारे पास, सेठ !"

सेठ नम्रता से बोला—"मैं तो दास हूँ आप सब लोगों का···आज्ञा दीजिये।"

चौधरी ने हँसते हुए कहा—"तुम्हारी इन्हीं बातों ने तो हमें मोह रखा है, वरन् शहर में शाहूकारों की क्या कमी है !"

सेठ ने उत्तर दिया—"चौधरीजी, क्यों लज्जित करते हो अच्छा, कहिये क्या कर सकता हूँ ?"

चौधरी—"बात यह है कि चाचा की लड़की रूपा को तो तुम जानते हो।"

रूपा का नाम सुनते ही सेठ न जाने क्यों सन्न-सा रह गया। चौधरी ने बात चालू रखी—"अब वह सयानी हो गई है···हम गाँव वालों की हार्दिक इच्छा है कि शीघ्र उसका ब्याह कर दिया जाये।"

सेठ बीच में बोल उठा—"बड़ा शुभ विचार है। प्राय: जवान लड़के-लड़की का बिठाये रखना बड़ी आपत्ति का कारण बन जाता है।"

"निस्सन्देह," चौधरी ने बात समाप्त न होने दी, "यही बात हमारे मन में भी है···सो हम इसी आशय से तुहारे पास आये हैं, कि तुम व्यय उठाने के लिये तैयार रहो···बस सवेरे-साँझ किसी समय आवश्यकता पड़ सकती है।"

सुनकर सेठ के प्राण से निकल गये। उसने यही समझा कि रूपा का नाता कहीं निश्चित हो चुका है और एक-आध दिन में ब्याह की तिथि निश्चित होने

आखिर चौधरी ने चुप्पी को तोड़ा और ग्रामीण-भोलेपन में पूछ लिया, "क्यों सेठजी, क्या पूंजी तैयार नहीं या देना नहीं चाहते ?"

सेठ ने साहस बटोरकर स्वयं को सँभाला और दृढ़ता से उत्तर दिया "चौधरीजी, दोनों बातों में से कोई भी नहीं, कई दिनों से मन कुछ अस्वस्थ है, इसी से कभी-कभार यूँ हो जाता है, हाँ तो नाता कहाँ किया ?"

यह सुनकर चौधरी और चाचा की भी घबराहट दूर हुई। उत्तर दिया, "नाता तो अभी कहीं नहीं हुआ, भरसक प्रत्यन हो रहा है...सब गंगू नाई पर निर्भर है...तुम जानते हो वह बहुत चतुर और चलने-फिरने वाला व्यक्ति है... आशा है कहीं न कहीं शीघ्र ही बात ठहरा देगा।"

चौधरी के इस वाक्य से सेठ का मुख खिल उठा और धमनियों में रुका लहू फिर प्रवाहित हो गया। किन्तु व्यक्ति चतुर था, मानसिक भावना न होने दी और बोला—"चौधरी! आप गाँव वालों के सम्मान को मैं सम्मान समझता हूँ, आप लोगों के सुख को अपना सुख, और आप लोगों दुख को अपना दुख जानता हूँ। जहाँ तक आपका और चाचा का सम्बन्ध , मैं आपको बड़ा जानता हूँ...आप मेरे लिये आदरणीय हैं...आप जब चाहें और जितना चाहें रुपया ले सकते हैं...मेरी मजाल नहीं कि चूँ करूँ।"

चौधरी और चाचा प्रसन्न होकर फूल के समान खिल उठे। यह बात यहीं समाप्त हो गई और इधर-उधर की बातें होने लगीं। चाचा को शहर में भी काम था। चौधरी से कहने लगा—"तुम थोड़ा बैठो, मैं अभी आता हूँ।"

सेठ को चाचा के चले जाने से अकेले में चौधरी से बात करने का अवसर मिल गया। उसके बेटे की बात छेड़ दी और उसके यहाँ आने का अभिप्राय और दोनों के बीच हुई पूरी बातचीत बता दी। चौधरी, बेटे की इस बात पर बड़ा झल्लाया और बोला—"यदि उसने ऐसी मूर्खता न की होती तो मैं अवश्य

सेठ—"तो क्या तुम्हारा यह निर्णय अटल है ?"

"बिल्कुल अटल ।" चौधरी ने तनकर उत्तर दिया ।"

सेठ—"यदि यही बात है तो मुझे कुछ कहने की अनुमति दो ।"

चौधरी—"नहीं, इस विषय में बिल्कुल नहीं । हाँ, और कोई बात हो त ।"

सेठ आँखें नीची करके बोला—"मैं अपने लिये कुछ कहना चाहता हूँ ।"

"अवश्य कहो," चौधरी ने उत्तर दिया ।

सेठ—"तुम जानते हो चौधरी, मेरी पत्नि ढाई वर्ष हुए, छः महीने की बच्च ड़कर मर गई थी, और जब से इस घर को सँभालने वाला कोई नहीं । ब ानों से नाना आया पर मन न जमा । यही समझा वह लोग मेरे धन के भू । आप सब लोगों से मेरा मन पर्चा हुआ है । कई बार कहना चाहा पर ह खुल सके । अब चूँकि अकस्मात ही यह बात चल निकली है, मुझे भी साह ा । उचित समझो तो चाचा से मेरे लिये कह दो । यदि मेरा निवेदन स्वीक जाये तो अपने को बड़ा भाग्यवान समझूँगा और आजीवन आप का दा ूँगा, वरना चौधरी जी ! मैं तो यही निश्चय किये बैठा हूँ कि कहीं ब्याह रूँगा ।"

सेठ की यह बात सुनकर चौधरी बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, "सेठ जी न से भरसक प्रयत्न करूँगा और मुझे विश्वास है मेरी बात मानी ायेगी ।"

"तो फिर कब तक मेरी बात का उत्तर दोगे ?" सेठ ने प्रसन्नचित कहा

"बस, यही दो-एक दिन में...और यह समझ लो कि काम बन ादेगा ।" चौधरी ने विश्वास से उत्तर दिया ।

सेठ कुछ और कहने ही को था कि सामने से चाचा आता दिखाई दि ौर बात यहीं समाप्त हो गई । चाचा ने आते ही चौधरी से कहा, "अच्छा ब सेठ जी से आज्ञा लो, दोपहर चढ़ी आ रही है ।"

सेठ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया कि दोपहर को आराम करके दिन ढ जायें, किन्तु वह न रुके और गाँव की ओर लौट गये ।

लौटते हुए चाचा और चौधरी एक दूसरे से सेठ की प्रशंसा करते चल
रहे थे कि चौधरी ने बात पलटी और कहने लगा, "चाचा ! यह सेठ बड़ा
पुरुष है, देखो जवान है, धनी है, पत्नि ढाई तीन वर्ष से मर चुकी है, किन्तु
तक इसने किसी को कुदृष्टि से नहीं देखा—इसकी कोई बुरी हवा नहीं उड़ी

"इसमें क्या सन्देह है और यह वास्तव में बड़ी प्रशंसनीय बात है।" च
ने समर्थन किया।

चौधरी—"और शील, देखो कितना है।"

चाचा—"हाँ, देख लो ना हमसे किस सद्भाव से मिला है।"

चौधरी—"हमारी रूपा सुन्दर है। ऐसे ही घर के योग्य है।"

चाचा हार्दिक कामना से बोला—"ऐसा घर कहाँ से लायें, चौधरी जी

चौधरी—"लाना कहाँ से है, है जो।"

"इसका अर्थ ?" चाचा आश्चर्य से चौधरी की ओर देखते बोला।

चौधरी—"इसका अर्थ यह कि यदि तुम चाहो तो प्रयत्न किया जा सकता है

चाचा—"क्या बातें करते हो यार चौधरी ! बात वह करनी चाहिये
होती दीखे।"

चौधरी—"होने वोने को तो मैं नहीं जानता। तुम हाँ करो, फिर दे
या होता है ?"

"क्या तुम सच कह रहे हो चौधरी ?" चाचा ने आँखों में आँखें डालक
छा।

चौधरी—"तो और क्या मैं ठट्ठा कर रहा हूँ ?"

चाचा—"यदि तुम्हें इस बात की सचमुच आशा है तो भाई चौधरी,
ी-जान से प्रसन्न हूँ।"

चौधरी—"है पक्की बात ?"

चाचा—"हाँ, बिल्कुल पक्की। किन्तु यह बताओ तुम्हें यह सूझी क्योंक
और इस बात के बनने का विश्वास क्योंकर है ?"

चौधरी हँसते हुए बोला—"चाचा अब मैं तुमसे नहीं छिपाता। सेठ ने त

"भाइ चौधरी ! मैं तुम्हारा यह उपकार आजीवन न भूलूंगा।" चाचा ने
ी का यह धन्यवाद करते हुए कहा ।
चौधरी—"मैं तुम्हें बधाई देता हूँ चाचा । वास्तव में रूपा बड़ी भाग्य वाली
और हाँ, चाची भी प्रसन्न हो जायेगी ?"
चाचा—"क्यों नहीं, क्या वह ऐसी सिर फिरी है कि यह नाता पसंद न
? हाँ वह रूपा की अवश्य सहमति लेगी ।"
चौधरी—"हाँ, यह बहुत आवश्यक है। उसकी सहमति तो होनी ही
ये । जीवन भर का तो उसी का साथ होना है।"
चाचा—"खरी बात है।"
चौधरी—"तो चाची से कब कहोगे ?"
चाचा—"बस अब जाते ही।"
चौधरी—"हाँ, अब इसमें देर न होनी चाहिये। मैं चाहता हूँ कि कल
ों तक मँगनी हो जाये, नहीं तो कौन जानता है कि सेठ के मन में क्या परि-
न हो जाये।"
चाचा—"जी कोई आश्चर्य नहीं । मानव मन भी नदी के समान होता है।
में कभी पूर्व की तरंग उठती है, कभी पश्चिम की।"
गाँव आ गया। बात यहीं समाप्त हो गई और दोनों अपने-अपने घरों को
दिये ।

तो नहीं कर रहे ?"

"अरी पगली ! कभी ऐसी बातों में भी हँसी होती है ?" चाचा ने गम्भीर मुद्रा में कहा।

"सच जानो, मैं तो हँसी ही समझ रही थी।" चाची प्रसन्नता से हँसते हुए बोली।

चाचा ने भी अपनी बाहें उसके कंधों पर फैला दीं और मुस्कुरा कर देख हुए बोला—"मेरी तुम्हारी हँसी की और बातें थोड़ी हैं।"

चाची हँस पड़ी और उसकी बाहें झटक कर परे हटाते हुए बोली—"हटो अब लगे ऐंठने।" दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

चाची—"अच्छा तो अब मेंहदी का महूर्त कब कर दें ?"

चाचा—"मूर्खता की बातें न करो...पहले रूपा से पूछो या किसी के द्वारा उनसे पुछवाओ।"

चाची—"हाय ! इसकी क्या आवश्यकता है ?"

चाचा—"है। तुम नहीं समझतीं। सयानी बच्ची है, समझ वाली है, गुण-वान है...उसे अँधेरे में नहीं रखना चाहिये।"

चाची सोचकर बोली—"अच्छा।"

चाचा—"किस से पुछवाओगी ?"

चाची—"चम्पा जो आई हुई है...उससे अच्छी पूछने वाली और कौ होगी ?"

चाचा—"अहा हा...यह ठीक है...तो जाओ अभी चम्पा के पास।"

चाची—"अभी जाती हूँ, तुम्हें खाना तो खिला दूँ।"

चाचा—"खाना-वाना रूपा दे देगी, तुम जाकर यह काम करो...और देखो चम्पा को भली प्रकार समझा देना।"

रूपा बाहर आँगन में बैठी दुपट्टा काढ़ रही थी। चाचा, चाची की खुसर फुसर उसने साथ वाली दीवार पर के झरोखे से पूरी सुन ली थी। चाची भीतर से निकल कर बाहर की ओर चली तो उसने आँख उठा कर चाची को देखा और मुस्कुराकर फिर कढ़ाई में लग गई। चाचा भी बाहर निकल आया औ

से खाना परोसने के लिये कहा।

"और चाची कहाँ चली गईं ?" रूपा ने बनते हुए पूछा। चाचा—"व
ो कार्यवश बाहर गई हैं···जाने कब लौटे ?"

रूपा सुई-धागे दुपट्टे में लपेट कर उठी और चाचा को खाना खिलाने लगी
ी में खाना और गिलास में पानी लाकर चाचा के सामने रख दिया। फि
ो को ताजा किया, चिलम में आग धरी और बाहर छप्पर के नीचे बिछ
पाई के पास रख आई। चाचा खाना खाकर चारपाई पर जा लेटा औ
ो पीने लगा। रूपा खाने के बर्तन उठा कर फिर कढ़ाई का काम ले बैठी।

कुछ समय पश्चात् चाची लौटी और सीधी चाचा के पास पहुँची। फि
के-चुपके कुछ बातें करने लगी। अभी कुछ ही समय बीता था कि चम्पा क
ाज कान में आई जो बाहर खड़ी चाची से पूछ रही थी, "रूपा कहाँ है ?
ा दबे होठों मुस्कराई और वहीं आँगन में बैठे-बैठे पुकार उठी—"इधर आओ
पा यहाँ बैठी हूँ, आँगन में।" चम्पा हँसती हुई भीतर आई और चारपाई प
र बैठते बोली—"अभी से छिप कर बैठने लगीं ?" रूपा इस वाक्य का अ
समझ गई, किन्तु मुस्कुरा कर चुप हो रही।

चम्पा ने फिर छेड़ा। दुपट्टे की ओर संकेत करके बोली—"प्रायः अप
मों की तैयारियाँ स्वयं ही करनी पड़ती हैं।"

रूपा उसकी छेड़ों को भली-प्रकार समझ रही थी और देख रही थी कि व
ा धीरे-धीरे बात के ढब को वास्तविक उद्देश्य की ओर ला रही है। उसक
र देखकर मुस्कुराई और बोली, "अधिक चतुराई न दिखाओ, सीधी-सीध
त करो।"

चम्पा हँस कर उससे लिपट गई और बोली, "बड़ी काईयाँ हो रूपा ?"

रूपा—(हँसते हुए) "क्यों, इसमें काईयाँपन की क्या बात है ?"

चम्पा—(हँसते हुए) "अच्छा बताओ तुम क्या समझीं ?"

रूपा—"वही जो तुम समझाने आई हो।"

अब तक तो बातें हँस-हँस कर हो रही थीं, किन्तु, चम्पा कुछ गम्भीर ह
ई और बोली, "यह तुम क्योंकर समझीं कि मैं कुछ समझाने आई हूँ ?"

रूपा ने भी बनावटी गम्भीरता से सुई-धागे पर दृष्टि जमाये उत्तर दि
"चाची की बुलाई हुई जो आई हो।"

चम्पा हँसी न रोक सकी और खिलखिला कर हँस पड़ी। रूपा भी हँसने ल

चम्पा—"अच्छा, तनिक यह दुपट्टा परे रख दो और कुछ बातें कर लो

रूपा—"अभी छोड़ती हूँ, दो चार धागे रह गए—ए लो बस शेष
करूँगी।" रूपा दुपट्टा लपेट कर उठी और ताक में रखते हुए बोली, "हाँ,
कह, लो···क्या कहती हो ?"

चम्पा—"कहूँ क्या, तुम सब कुछ जानती ही हो।"

रूपा—"हाँ, मैंने चाचा-चाची की सब बातें सुन ली हैं··· । वह तो भी
ठे अपनी बूझ में चुपके-चुपके बातें कर रहे थे और मैं यहाँ बैठी सब कुछ
थी।"

दोनों हँसने लगीं।

चम्पा—"तो तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपा—"क्या बताऊँ, बड़ी उलझन में हूँ।"

चम्पा—"रूप-रंग का अच्छा है। धन वाला है। अच्छे चाल-चलन का है
अब इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए, मैं तो यह कहती हूँ तुम हमारे गाँव
सबसे अधिक भाग्यशाली लड़की हो। हाँ, इस नाते में एक उलझन अवश्य है
पहली पत्नी से ढाई वर्ष की एक बच्ची है। पर मुझे विश्वास है, कि तुम्हार
प्यार और स्नेह उसे ऐसा बना लेगा कि वह तुम्हीं को अपनी वास्तविक माँ सम
झने लगेगी।"

रूपा—"मैं इतनी संकीर्ण-हृदया नहीं चम्पा, कि इस नन्हीं-सी बच्ची
अपने लिये उलझन समझूँ। यदि वह बड़ी होती तो भी उसे उलझन न समझती
···मैं स्वयं भी तो ऐसी ही अनाथ थी और दूसरों ने ही अपनी सन्तान सम
कर मेरा लालन-पालन किया है। साफ़-साफ़ कहती हूँ यदि मुझे उस घर में जा
ही पड़ा तो भी उस बच्ची को कलेजे से लगा कर रखूँगी।"

चम्पा—"रूपा ! मेरी प्यारी रूपा ! तुम बड़ी अच्छी हो, बड़ी ही अच्छी
मुझे विश्वास है, कि तुम्हारा आचार-व्यवहार और तुम्हारी शुभ-कामनायें, तु

अब मृत्यु का सा सन्नाटा रहने लगा । घर में तीन व्यक्ति थे और तीनों
यह दशा थी कि इस घर में एक दूसरे से अलग-अलग दीखते थे । चा
र के तले, कली की नड़ी मुँह से लगाये गुम-सुम पड़ा रहता । चाची रसो
में चूल्हे से लगी सिर पकड़े बैठी रहती और रूपा चुपचाप काढ़ने में ल
ी । यदि किसी ने दिन को दो चार ग्रास खाने के गले में उतार लिये तो र
बिना खाये पड़ रहे और यदि रात को कुछ खा लिया तो दिन का खाना बं
जब से चौधरी के बेटे वाली घटना हुई थी, चाची ने रूपा का गाँव
लना और फिरना बन्द कर दिया था, यहाँ तक कि जब सवेरे-शाम कुएँ
ी भरने जाती, तो चाची भी साथ जाती । गाँव की साथ खेली लड़कियाँ उ
पास उठने-बैठने के लिये उसी के घर आ जाया करती थीं, किन्तु चाचा-चा
चिन्ताओं ने उनके पाँव भी रोक लिये । हाँ, चम्पा निरन्तर आती रही,
ह के विषय में फिर उसने कभी रूपा से बातचीत न की ।

ऐसे ही घन्टों और पहरों से दिन, दिनों से सप्ताह और सप्ताहों से मह
कर बीतते रहे । समय का चक्र बड़ी वस्तु है, यह बड़ी-बड़ी विवशताओं
ा देता है, कठोरताओं को नम्रता में परिवर्तित कर देता है । आखिर गाँ
सी को रूपा से कोई बैर तो था ही नहीं । चाचा-चाची का तो कहना ही
तो उसको देख-देख कर जीते थे । रूपा फिर वही रूपा थी, सखियाँ
खियाँ, और चाचा-चाची फिर वही चाचा-चाची । जीवन धीरे-धीरे
पर आ रहा, जिस पर पहले था, घर का वातावरण भी बदल गया
नियों का जमघट भी रहने लगा ।

एक दिन, साँयकाल, कुएँ पर पानी भरने वालियों की भीड़ थी । कुछ
पानी भर रही थीं और कुछ घाटों के खाली होने की प्रतीक्षा में इधर-उ
चार की टोलियाँ बनाये खड़ी बातें कर रही थीं । सामने नगर से आने व
ड़क पर से एक बूढ़ा आता दिखाई दिया । श्वेत लम्बी दाढ़ी, पीठ पर लि
ा कम्बल, कंधे पर झोला लटकाये, एक हाथ में हुक्का और दूसरे हा

पुराने ताप को जड़ से उखाड़ देने, साँप बिच्छू के विष और भूत चुड़ैल के प्रभा को मन्त्रों से दूर करने और हस्तरेखा से भाग्य पढ़ने में विशेषज्ञ समझा जात था। आज वर्षों के बाद इसका इधर आना हुआ था। मुस्कुराता हुआ सीधा कु की ओर आया। किसी ने हाथ जोड़े, किसी ने केवल माथे पर हाथ रखना ह पर्याप्त समझा, किसी ने हँस कर स्वागत किया। कोई बड़े भैया, कोई चाच और कोई बाबा के नाम से सम्बोधन करके उसकी कुशलता पूछने लगी। बू ने भी खिले हुए मुख से सब के घरों और बच्चों की कुशल पूछी। एक हँसक बोली, "बड़े भैया ! आज किधर भूल पड़े। बहुत दिनों में चाँदनगर याद आया हम तो सोचा करती थीं, क्या बात है, बड़े भैया क्यों नहीं आये ?" एक अल्हड़ उठी—"हम तो समझ बैठी थीं कि बाबा जी परलोक सिधार गये।" सब ड़ी, बूढ़ा भी हँसने लगा। बूढ़े ने कम्बल की गठड़ी एक ओर उतार कर ा। पाँव की मिट्टी झाड़ कर झोले से चिलम, तम्बाकू और कोयले की थैली ाली और हुक्का एक लड़की की ओर बढ़ा कर बोला—"लो बिटिया। इसका नी तो बदल डालो।" लड़की ने हुक्का थाम लिया। एक स्त्री बोल उठी, "हाय ! बड़े भैया गाँव में न चलोगे क्या ?" बूढ़ा बोला—"हाँ बहना ! आज रात को तो सामने बहारपुर में विश्राम करूँगा। एक रोगी को देखना है।"

बुड्ढे ने कोयलों पर कपड़े की धज्जी रखकर दियासिलाई से उसे आग दिखाई और भड़काने लगा। वह स्त्री फिर बोली, 'बड़े भैया ! मैंने तो अपनी पोती को दिखाना था, छः महीने से खाँसी में तड़प रही है।" दूसरी बोल उठी, इतने दिनों पश्चात आये हो चाचा ! एक-आध दिन तो रुकते। मेरे छोटे बच्चे को फुंसियों ने दुखी कर रखा है।" "हाँ, हाँ, आऊँगा" बुड्ढे ने आग भड़का हुए उत्तर दिया।

लड़की हुक्का ताजा करके ले आई। बुड्ढे ने चिलम में तम्बाकू जमा कर आग रखी और बैठकर पीने लगा। स्त्रियाँ उसके पास ही बैठ गई और इधर

। धान की फ़सल कीड़े ने नष्ट कर दी । एक बैल को फाली लग गई और
ड़ा बना घर खड़ा है । आगे की जुताई का काम यूं पट हो गया···बस
ो ईश्वर ही रक्षक है ।"
ड़े ने हाथ थाम कर देखना आरम्भ किया और थोड़ी देर बाद सोच कर
-"कुछ चिन्ता न कर बेटा ! ग्रह का चक्र समाप्त हो गया है, अब
ने चाहा तो अच्छा ही अच्छा है ।"
ा की चाची को हर समय रूपा की ओर से उधेड़-बुन लगी रहती थी ।
सर देखकर उसके मन में भी बवंडर सा उठने लगा । रूपा मचलती ही
किन्तु चाची ने हाथ घसीट कर उसे बुड्ढे के सामने ला ही बिठाया और
-"बड़े भैया ! बताओ तो सही, मेरी रूपा का व्याह कब होगा ?"
ढे ने ध्यान पूर्वक देखकर रूपा को पहचाना और हँसते हुए उसके सिर
फेर कर बोला—"अरी, तू रूपा है ? तू तो जवान हो गई बँदरिया ।"
सब हँसने लगीं और रूपा संकोचवश नीची दृष्टि करके मुस्कुराने लगी ।
ची हँसते हुए बोली—"बड़े भैया तुम वर्षों बाद आये हो, लड़की और
की बेल तो रात बसे में कहीं से कहीं पहुँचती है ।"
ब हँसने लगीं । बुड्ढे ने रूपा का हाथ थाम लिया और ज्योंही हाथ पर
ाली, उसकी आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गईं । भवें ऊपर को तन
र माथा सलवटों से भर गया । बड़े ध्यान से हाथ को बार-बार देखता
भी हथेली को फैला कर रेखाओं पर दृष्टि डालता, कभी हथेली को ढीला
उनका निरीक्षण करता । कभी उसका ध्यान उसकी लम्बी लम्बी सुकुमार
ों पर और कभी हथेली के उन उभारों की ओर होता जो हथेली के दोनों
ं पर स्पष्ट थे । लगातार ध्यान पूर्वक देखते रहने के पश्चात् उसने दूसरा
ा और फिर उसके माथे पर आँखें गाड़ के देखता रहा । आखिर उसने
ोड़ दिया और बोला—"बस, बेटा ! बैठो ।"
पा खिसक के पीछे हट गई । न जाने उसके मस्तिष्क में क्या-क्या विचार
हे थे किन्तु, इतना उसके मुख से अवश्य प्रगट हो रहा था कि वह बड़ी
है ।

बुड्ढा बैठा हुआ सोच रहा था, और कभी-कभी हुक्के की नाड़ी कर लेता और फिर गहरे विचारों में डूब जाता। सब स्त्रियाँ मूर्तिव बैठी थीं। उनकी दृष्टि कभी रूपा पर, और कभी बुड्ढे पर जम ज चाची, यह सब देखकर बड़ी व्याकुल हो रही थी। कुछ देर तो व देखती रही और फिर स्वयं ही मौन को तोड़ते बोली—"बड़े भैया ! बता दो, मेरी रूपा की कुशल भी है।"

बुड्ढा खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला—"पगली बहना ! कु नहीं ! सब कुशल है।"

"तो फिर बड़े भैया ! तुम इतने चिन्तित क्यों हो ?"—चाची ने ‍ ‍छा।

बुड्ढा फिर चुप रहा और हुक्का पीता रहा। चाची ने कुछ देर त . और फिर व्याकुल होकर बुड्ढे के पाँव में गिर पड़ी, और रोने लगी ‍ला, और उसे पकड़कर उठाते हुए बोला—"अरी ! क्यों पगली हुई है ‍स लड़की का हाथ मत दिखाईयो···तेरी रूपा बड़ी भागों वाली है···ब ‍ाली।" इतना कहकर बुड्ढा चुप हो गया और हुक्का पीने लगा। ‍ मुख पर प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई और वह हर्ष से फिर बुड्ढे के प ‍गर पड़ी।

बुड्ढा घबरा कर उठ खड़ा हुआ, और चाची का हाथ पकड़ कर उ ‍हने लगा—"बहना ! तेरी रूपा रानी है, रानी !" यह कहकर, उसने ‍झोला और कम्बल उठाया, लठिया बग़ल में दबाई और खड़ा हो गया ‍स्त्रियाँ भी उठ खड़ी हुई। बुड्ढे ने रूपा पर दृष्टि डाली जो आँखें झुका ‍ी। और लंम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुस्कुरा कर बोला—"बेटा इ ‍ो न भूलना।"

बुड्ढा हुक्का पीता, धुआँ छोड़ता चला जा रहा था और सब खड़ी उ ‍ही थीं। जब वह झाड़ियों में आँखों से ओझल हो गया, तो सबकी सब ‍ई काएँ पर जा चढ़ीं और रूपा की चाची को बधाई देने लगीं। चाची हँ

े होंठ, पीला मुख, हवाइयाँ सी उड़ती हुई, खोई-खोई सी ! एक दो सखि
जब उससे चिपट कर 'रूपा रानी' 'रूपा रानी', जो कहा तो उसकी अ
ड़वा गई। सब विस्मित थीं कि उसकी यह दशा क्यों है और कोई कुछ
मझ सकी। चाची ने लड़कियों से कह कर शीघ्र अपने घड़े भरवाये और ह
ो लेकर घर की ओर चल दी।

रूपा के इन्कार की घटना अपने ढंग की अनोखी घटना थी। इसकी सूच
ठ को भी तुरन्त शहर में पहुँच गई थी। चाचा-चाची तो कलेजा थाम कर
ो गये थे पर इन से बढ़ कर बिजली सेठ पर गिरी कि उसकी प्रार्थना का
ुकरा दिया जाना न केवल मन को ठेस पहुँचाने वाला था, बल्कि अपमानजन
ी था। इस विषय में वह चौधरी के अतिरिक्त किसी से भी बातचीत न कर
ाहता था। कई दिन के पश्चात् जब चौधरी शहर जाकर सेठ से मिला अ
उनका आपस में विचार-विमर्श हुआ। वे दोनों हैरान थे कि किसलिए वह लड़
अपना भविष्य बिगाड़ने पर तुली हुई है। वह कौन-सा ऐसा रहस्य है कि जि
ह प्रगट नहीं करती। नियम है, जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो दुनि
ाले भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगते हैं। कोई न कोई कारण घड़ लि
ाता है और विचारों की दौड़ चारों ओर आरम्भ हो जाती है। सेठ क
लगा—"यूं तो चौधरी जी ! मेरा भी गांव में आना-जाना हर समय का है
बच्चे-बच्चे को जानता हूँ, किन्तु; तुम्हारी अपेक्षा मेरा ज्ञान इतना गहरा नहीं
सकता। क्योंकि तुम्हारा वहीं का रहन-सहन है। दूसरा यह कि तुमने जग दे

ा यह तो बताओ कि इस लड़की के चाल-चलन में किसी प्रकार की आ-
ी कभी तुम्हें है।"

ौधरी—"नहीं सेठ जी, कभी नहीं। मैं यह बात विश्वास से कह सकता
लड़की बड़ी अच्छी है। यद्यपि, इसके चाचा ने इसे नाचने-गाने की शिक्षा
ो दी, और दूसरों से भी दिलवाई है। इसे हर प्रकार की स्वतन्त्रता भी
भी यह बात बड़ी प्रशंसनीय है कि वह दूसरी लड़कियों से अधिक लजीली
वित्र है।"

—"जिन लोगों ने इसे शिक्षा दी वह कौन थे ?"

धरी—"यह क्या बताऊँ वह कौन थे। चाचा ने कईयों को समय-समय
ने घर रखा। कोई फ़ारसी और संस्कृत का अध्यापक, कोई गणित का,
वे और कोई रागी—बस यही लोग थे—यह बात पूछने से तुम्हारा अर्थ
?"

—"मेरा अर्थ यह है, कि सम्भव है कि इनमें से कोई व्यक्ति ऐसा हो,
यह लड़की आकृष्ट हो।"

धरी हँस पड़ा और बोला—"नहीं, नहीं। यह शंका तो मिथ्या है। वे
बुड्ढे थे। बुड्ढे भी कैसे थे, खूसट। और यूँ भी बहुत भले लोग। वर्षों
में रहे क्यूँ कर न पहिचाने जाते।"

—(सोचकर) "आश्चर्य है फिर क्या बात है ?"

धरी—"आश्चर्य सा आश्चर्य, सारे गाँव को अचम्भा-सा हो रहा है।"

—चौधरी जी। कुछ हो, थाह में कुछ न कुछ बात अवश्य है।"

धरी—"बस एक बात मेरे मस्तिष्क में आती है।"

—"क्या ?"

धरी—"सब जानते हैं कि यह लड़की अच्छी कवि भी है। फ़ारसी इत्यादि
सी कुछ नहीं जानता। हाँ, भाषा के जो दोहे उससे सुने हैं उससे यह
लगाना सहज है, कि इस लड़की का विचार कुछ इस प्रकार का है,
त को बडा कष्टप्रद समझती है। संसारिक सुख को ढलती-फिरती छावँ

रुचि हो। दूसरी बात यह है कि इसे चाचा-चाची से बड़ा अनुराग है। गा
ड़ी हो गई है, फिर भी अभी प्यार में उनसे बालकों का-सा हठ करती है।
अनुमान लगाया जा सकता है कि वह चाचा-चाची से अलग नहीं होना चाहती

रूपा के इन्कार ने सेठ जी को बड़ा दुख पहुँचाया, किन्तु उसके मन में उ
ति सम्मान और भी बढ़ गया, और हर मूल्य उसे प्राप्त करने की चाह ने उ
ृदय में अंगारे से दहका दिये। बार-बार करवटें बदलता था, सोचता था, वि
ोई विधि ऐसी सुझाई न देती थी जो सफल हो। कहने लगा—"चौधरी जं
ुमने जो कुछ मेरे लिए किया, उसका मैं आभारी हूँ। तुम्हारे उपकार कभी
ूलूंगा, परन्तु; इतना फिर कहता हूँ कि तुम अपनी ओर से प्रयत्न करते रहन
म्भव है कि समझाने-बुझाने और कहने-सुनने से किसी समय उसके विचार
रिवर्तन हो जाये। निरन्तर पानी की बूंद-बूंद भी पत्थर की सिल में छेद
ती है।"

चौधरी—"सत्य है सेठ जी ! मैं अपना प्रयत्न चालू रखूंगा। किन्तु ज
क इस लड़की को मैं जानता हूँ, वह बड़ी हठ वाली है। अपने निश्चय से पल
ाली नहीं।"

सेठ—"हाँ ! ऐसी ही होगी। किन्तु जीवन में प्राय: यह देखने में आता
के हम-तुम कोई दृढ़-निश्चय भी कर लेते हैं, तो परिस्थितियाँ बाद में वह बदल
र भी विवश कर देती हैं। सत्य यह है कि हमारे निश्चयों को बदलने वाल
ौर उनमें बाधा देने वाली एक ऐसी दैवी-शक्ति भी होती है जो काम कर
हती है और जिसके अधिकार में हम पल भर के लिए भी स्वतन्त्र नहीं
कते। यदि भाग्य में यह कार्य हमारे पक्ष में होना लिखा है, तो अवश्य होव
हेगा। यत्न तो करना ही होगा। आगे भगवान की इच्छा।"

चौधरी—(हँसते हुये) "सेठ जी ! हो तो युवक, पर बातें तो बड़ों की
रते हो। तुम्हारे कहने से मुझे कुछ अपनी घटनायें याद आ गईं। मेरा एक बै
ा, अल्प-आयु, सुन्दर और बहुत चतुर। हाथ पांव का बड़ा सुथरा और मे
ग पड़ा, इसके बड़े-बड़े मूल्य पड़े, पर मैंने कभी उसे देना न चाहा। एक दि
हीं खुल गया। पास खाने गिरे हुए मकान के मलबे से होता हुआ छत पर

है, भला तुम जानते हो यह बात कितनी अशुभ होती है। अड़ौसी-पड़ौ
शंक बात की चर्चा करने लगे। विवश होकर उसे बहुत ही थोड़े मोल प
पड़ा। मन बहुत दुखा। और एक दिन ऐसा हुआ कि इधर चौधरानी वे
हुआ और उधर भैंस दूध से भागी। छिल्ले में दूध-घी का घर में होना व
श्यक है। दूसरी भैंस की खोज हुई। बहुत देखा-भाला न मिली। एक भैं
समय से गाँव में बिकाऊ थी किन्तु, उस में सब से बड़ा दोष यह था, कि
थी। दूध-घी की भी ऐसी अच्छी न थी इसलिए कोई ग्राहक न बनता
आवश्यकता थी, इसलिए इच्छा के विरुद्ध भी लेनी ही पड़ी, और दाम भी
ही लगे। इससे मारें भी खाई, चोटें भी सहीं, परन्तु रखी और अब ट
पन। चाहता हूं, पर कोई ग्राहक नहीं बनता।" सेठ मारे हँसी के लं
।य। और चौधरी भी हँसने लगा।"

सेठ—"अच्छा, अब यह बताओ कि कौन सी विधि अपनाई जाये?"

चौधरी—"कोई नई विधि तो मुझे नहीं सूझी, यदि तुम कुछ बत
: .....।"

सेठ—"मेरा विचार तो यह है, कि तुम चाचा पर दबाव डालते रहं

चौधरी—"यह तो करता ही रहूंगा। किन्तु रूपा की इच्छा के
चाहें चाचा हो या चाची, दोनों में से एक भी बाल-भर इधर से उध
ही सकते।"

सेठ—"फिर वही बात। तुम केवल उन पर दबाव डालते रहो और
रूपा को समझाने का प्रयत्न करते रहें! हमें तो बस इतना ही कहना है।

चौधरी—"हाँ, यह तो होता ही रहेगा, किन्तु, सफलता की आशा
ही है।"

सेठ—चौधरीजी, बड़े भोले हो। हमें सफलता का वचन तो नहीं
यदि होनी है तो हो जायेगी, नहीं होनी तो नहीं। हमें तो यत्न करना है।

चौधरी—"हाँ यह बात मैं मानता हूँ।"

सेठ—"यदि उचित समझो तो गंगू से भी कह दो कि ध्यान रखे। मैं
उससे नहीं कहना चाहता।"

चौधरी—"बड़े दिन से तुम गाँव में भी नहीं आये। कभी लगा
कर।"

सेठ—(कड़वी हँसी से) "क्या कहूँ चौधरी, कुछ झेंप सी हो गई है।"

चौधरी—"वाह! झेंप काहे की।"

सेठ—"यही एक बात जीवन में मुंह से निकली थी, वह भी परवा
ढ़ी। अपमान भी हुआ, लज्जित भी होना पड़ा। यदि यह बेल मँढे चढ़
अच्छा ही था।"

चौधरी—"ऐसे विचार नहीं रखने चाहियें सेठ जी। यह तो संसार के
यूं ही चल के आये हैं और यूं ही चलते रहेंगे।"

सेठ हँस पड़ा और कोई उत्तर न दिया।

चाँदनगर और उसके आस-पास के गाँव में बुड्ढे बाबा पर कुछ
विश्वास था, उसके मुंह से निकली हर बात पत्थर की लकीर समझी जाती
चाची पर बधाई के इतने मेंह बरसे, कि जिनकी कोई सीमा न रही। सारे
यही चर्चा बच्चे-बच्चे की जुबान पर कई सप्ताह तक रही। उस दिन
र चम्पा न थी, किन्तु सखियों द्वारा बुड्ढे बाबा का हर शब्द उसके कानों
हुँच चुका था। और उस समय जो दशा रूपा की थी, वह भी उसे ज्ञात
ई थी।

रूपा के चाचा-चाची पर पिछले महीनों निराशा की जो घटनायें छाई
हे एकाएक छट गई। अब वही मन की खिलन थी और वही हर्षोल्ल

चाचा-चाची के मुँह की खिलन फिर वापिस आ गई थी हर दिन का सू
उनकी आशा के उपवन में नई वसन्त लेकर प्रकट होता। किन्तु वह अ
करते कि रूपा कुछ बुझी-बुझी रहती है। उसकी मनोदशा उन्हें काँटे की
खटकती थी'।

सखियाँ आ जातीं, तो रूपा उनसे दो घड़ी हँस-बोल लेती और उनके
के बाद फिर वही मुरझाई-सी। चाची ने एक-दो बार पूछा भी, पर वह न
और बात को हँस कर टाल गई। अन्त में चाची ने फिर चम्पा से सहायत
और कहा कि वह उसकी चिन्ता का कारण पता करे। एक दिन उसे अकेले
कर चम्पा ने बात आरम्भ की। कहने लगी—"रूपा यदि मेरी कोई सगी
होती तो विश्वास करो मुझे उससे उतना ही स्नेह होता जितना तुम से है।
: मानसिक उलझन में तेरे को देख रही हूँ। वह मेरे लिए बहुत दुख
। मैं अब तक इस प्रतीक्षा में रही, कि शायद तुम भी मुझे अपना जान
भी न कभी अपने मन की दशा वर्णन करोगी। किन्तु मुझे बड़ी निराशा
: तुमने मुझे इस योग्य न समझा और आज तक चुप साधे हो। मैं अब
तुम से न पूछती पर यूं विवश हो गई कि मैं अब जाने वाली हूँ। तुम्हारे
गोई का संदेश आ चुका है। वह कुछ दिन में आकर मुझे ले जायेंगे। इसि
मन न माना, कि तुम्हारा दुख जाने बिना चली जाऊँ और यह काँटा मेरे ह
में खटकता रहेगा। क्योंकि न जाने अब बिछड़ने के बाद हम तुम कब मिले
यदि तुम्हें भी मेरे दुख का कुछ मान हो तो बता दो तुम्हें किस बात
दुख है?"

रूपा पर चम्पा की बात का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसकी आँखें भर आई
कुछ समय के बाद अपने मन को ठहरा कर उसने उत्तर दिया—"ब
बहन, मैं हाथ जोड़ कर तुम से क्षमा माँगती हूँ, कि मेरे कारण ही तुम्हें दु

चम्पा का भी जी भर आया। आँखें डबडबा आईं। आगे बढ़कर प्यार
ापट गई, और उसका माथा चूम कर बोली—"रूपा, मेरी रूपा! मैंने तु
न से क्षमा कर दिया।"

"रूपा ने गम्भीरता से कहना आरम्भ किया—"मैं तुम्हारा धन्यवाद क
बड़ी बहन! अच्छा अब लो मेरे दुख की कहानी सुनो! लगभग एक वर्ष
सपनों के संसार में खोई हुई हूँ, जिससे मेरे मन का सुख और चैन लुट च
—एक विशाल महल के पिछवाड़े के उपवन में एक ऐसे सुन्दर युवक को अ
म्मुख खड़ा हुआ पाती हूँ, जिसके सौंदर्य के तेज से आँखें चुंधिया जाती
वेत, रेशम के वस्त्र, सिर पर हीरों का जड़ित मुकुट, गले में मोतियों की माल
टि में जड़ाऊ कटार, होठों पर मुस्कान। मुझे ऐसी दृष्टि से देखता है, f
ों सहन नहीं कर पाती। मुझे अपना शरीर उसकी दृष्टि के प्रभाव से ऐसे पि
लता हुआ अनुभव होता है, कि जैसे सूर्य की किरणों से बर्फ पिघलती है। उ
यन-बाण मेरे हृदय में उतरते प्रतीत होते हैं। फिर, जब वह आगे बढ़
ेरे कन्धे पर हाथ रखता है, तो मैं बखान नहीं कर सकती कि उसके हाथ
पर्श मेरी आत्मा को कैसे अपने में समा लेता है। वह दशा जागने के बाद
नहीं बदलती। बल्कि इसका प्रभाव मुझ पर दिनों रहता है। मैं यह भी देख
हूँ, कि यही हाथ देखने वाला बुड्ढा-बाबा, गुलाब के पौधे के पीछे खड़ा ब
बार अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरता है और मुस्कुराता है।"

"उस दिन सायंकाल जब मैंने इस बाबा को दूर से आते हुए देखा, तो
यही सपना याद आ गया और मेरी मनोदशा बदलने लगी। फिर जब चलते
मेरी ओर देखकर मुस्कुराया और उसने अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर
मुझ से यूं कहा, "बेटा इस बुड्ढे को न भूलना तो मेरी आँखों में वही
फिर गया, जो मैं सपनों में देखती रहती हूँ।"

आँसुओं के मोटे-मोटे करण गालों पर ढलक गये ।

चम्पा, चकित हो मूर्ति बनी उसे तक रही थी । कुछ समझ में न आत कि उसे क्या कहे । आखिर बोली—"रूपा ! मुझे आश्चर्य हो रहा है, कि जैसी बुद्धिमति और पढ़ी लिखी लड़की किस भ्रम में पड़ गई है । किसी क पर अपने को कष्ट में डालना और स्वयं भविष्य को बिगाड़ना, कहाँ की मानी है ? मैं अब समझी कि तुम ने सेठ का नाता इसी भ्रम के आधार ठुकराया था । साफ़ कहती हूँ कि बड़ी भूल की । और अब भी कुछ नहीं बिग बात फिर हाथ आ सकती है ।"

इतनी देर में रूपा के मन में कुछ ठहराव आ गया था । कुछ रुक कर बात फिर चालू कर दी—"चम्पा ! तुम मुझे बहलाना चाहती हो, और सपनों को भ्रम बता कर, मुझे पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करती हो । यह है । यदि मैंने आत्मिक ज्ञान की यह पुस्तकें न पढ़ीं होती तो मैं तुम्ह बहलावे में आ सकती थी । मैं सपनों के सत्य से भली प्रकार परिचित हूँ । जानती हूँ, कौन से सपने भ्रम से उत्पन्न होते हैं और कौन से वास्तविकता प्रतीक—अभी तो मैंने सपने का एक ही भाग सुनाया है । दूसरा भाग वह जिसकी कल्पना में तुम्हें याद होगा मैंने उस दिन कहा था,

कहाँ जन्मे कहाँ पले, कहाँ लड़ाये लाड़,
क्या जाने इस देह के कहाँ गड़ेंगे हाड़ ।

वह दूसरा भाग इतना भयप्रद है, चम्पा ! कि उसकी कल्पना ही काँप उठती हूँ । किन्तु; तुम्हें चूंकि सुनाना ही है, इसलिये सुनाती हूँ ।"

मैं देखती हूँ रण-स्थल है, और मैं भी इस सुन्दर युवक के साथ ही घोड़े पर सवार हूँ । लोहे से लोहा टकरा रहा है । तोपों की गरज से दहल रही है । कानों के पर्दे फटे जाते हैं । वातावरण धूआँधाड़ हो रहा लाशों के ढेर पर ढेर लग रहे हैं । सुन्दर युवक बार-बार घोड़े को ऐड़ आक्रमण करता है, शत्रुओं के घेरे में डूब-डूब कर निकलता है और हर

कहता है, 'प्रिये ! तुम यहाँ से चली जाओ।' एकाएक फिर शत्रु का
ोता है। वह फिर झपटता है, यहाँ तक कि मेरी दृष्टि से ओझल हो
। शत्रु मुझ पर पिल पड़ते हैं और मैं उनसे लड़ती हुई घावों से चूर हो
से गिर पड़ती हूँ।"

ना कहकर वह रुक गई और हृदय पर हाथ रखकर कहने लगी, "आह
फिर मैं अपने आपको, एक पत्थर के दुर्ग में बंदी देखती हूँ और इस
ुवक के लिए दुर्ग की दीवारों से सिर टकराती फिरती हूँ कि एकाएक
ोखी बला मेरे सामने उत्पन्न होती है, जिसका शरीर मानव का, केवल
ड़िये का है। मुंह फैलाए, दाँत निकाले और आँखों से आग बरसाती मुझ
टती है। मेरे हाथ में न कटार है, न तलवार। इधर से उधर निहत्थी
फिरती हूँ। कोई मेरी सहायता को नहीं दौड़ता और वह है कि मेरा
ी किये जा रही है।"

बस चम्पा ! यहाँ मेरे स्वप्न का यह भाग समाप्त हो जाता है। और
री आँख खुलती हैं तो मैं अपने को पसीने से लथ-पथ पाती हूँ। यह दोनों
कभी मुझे इकट्ठे नहीं आते। पहले-पहला भाग, इसी रूप में, फिर कुछ
ाद दूसरा भाग, इसी रूप में। यह क्रमशः ऐसे ही आते हैं। बताओ मेरे
को क्या तुम अब भी भ्रम कहोगी ? मैं अपने सपने के पहिले भाग से
त अवश्य हूँ, किन्तु यह जान कर कि भाग्य का लिखा कोई नहीं मिटा
इसलिए इतनी अधीर भी नहीं हूँ। मेरी चिंता और व्याकुलता का
स्वप्न का पहिला भाग है। यह विश्वास है, कि वह सुन्दर युवक मुझे
ा तो सही, किन्तु ; चम्पा यह बताने वाला कोई नहीं कि वह कौन है ?
मलेगा ? कहाँ मिलेगा ? क्योंकर मिलेगा ?" उस की आँखों के सोते
ूट पड़े और वह बेसुध सी होकर घुटनों में सिर देकर बैठ रही।

चम्पा स्वप्न को भ्रम से अधिक कोई महत्व न देती थी। जब रूपा कुछ
हुई तो उसने फिर कहा—'बहन, यह तो सब भ्रम है। तुम व्यर्थ मन
शान्त करती हो।"

रूपा उसकी ओर देखकर मुस्कराने लगी और बोली—"चम्पा ! तुमने तो

दुखी क्यों रहती हो। तुम्हें तो प्रसन्न रहना चाहिये कि तुम्हारा प्रिय- मिलेगा।"

ा मुस्करा कर बोली—"प्रतीक्षा मृत्यु से बढ़कर है।"

पा—(गम्भीर होकर) "तुम्हारे तर्क से तो मैं हार मान गई, परन्त् ्य कहूँगी कि तुम्हें सँभलना चाहिये। यदि तुम्हारे यही विचार रहे तो श्य बावली हो जाओगी। तुम्हें तो दृढ़ हृदय से अपने प्रियतम के मिलन क्षा करनी चाहिये। फिर चाचा-चाची की चिन्ताओं से तुम अपरिचित ाह तुम्हारे ही कारण हैं। उन्हें प्रसन्न रखने के लिये तुम्हें अपनी यह ालनी चाहिये। अच्छा, अब बताओ कि जब चाची मुझ से पूछेंगी, तो ; ?"

ा—"किस विषय में ?"

ंपा—"यही कि रूपा चिन्तत क्यों रहती है ?"

ा—(सोचकर) "पहले तो वैसे ही झूठ बोलना पाप है, फिर माँ बाप बोलना तो महापाप है, किन्तु मैं यह नहीं चाहती कि मेरे-लिये उनं र भी दुख हो इसलिये उन्हें मेरे सपनों के विषय में कुछ न कहना, को ात बना कर कह देना।"

म्पा—"क्या बात बनाऊँ ?"

ापा—"कह देना वह कभी-कभी यह सोचकर चिन्तित हो जाती है कि ो जाने पर उनसे अलग हो जाना पड़ेगा।...और यह सच भी है चम्पा।

म्पा—(हँसकर) "यही कहूँगी। अच्छा, अब यह वचन दो कि तुम अपने ो सँभाले रखोगी।"

पा—(हँसकर) "हाँ! वचन देती हूँ...जलती हुई भी तुम सबको मुस्कुरात ाई दूंगी।"

म्पा—(हँसकर) "तोड़ डालूं मुंह तेरा। अपनी बातों से न हटेगी। अच्छा वचन यह दो कि जब तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी तो मुझे न भूलोगी। पा यह कहती हुई हँसकर लिपट गई—"कभी नहीं।"

ंगू नाई पुराना व्यक्ति था। पूरे क्षेत्र में उसकी अच्छी जान-पहिचान
ने को पहचानने वाला। इसीलिये लोग उस पर भरोसा करते थे।
सम्बन्ध में बड़ी सचाई से छान-बीन करके कोई बात मुँह से निक
कई बार ऐसा हुआ कि लोगों ने उसे लालच देकर काम निकालना
उसने इन्कार कर दिया। सेठ लोगों की बड़ी-बड़ी हुन्डियाँ और बह
इधर से उधर ले जाना, उसका नित्यदिन का काम था। व्याह के स
कार्य उसी के हाथों में पूर्ण होते थे। सब को विश्वास था कि
इस बात का प्रमाण है, कि कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण होगा। रूपा के
र खोजने का भार इसी भरोसे उस पर सौंपा गया था।
चौधरी का बेटा जब सेठ से मिल कर वापिस आया, तो रास्ते भर
ा आया था कि सेठ ने उसको सहायता का वचन तो दिया है किन्तु स
ई नहीं देती। वह सोचने लगा कि उसे गंगू से भी बातचीत करनी चा
थोड़े ही दिन हुये उसका अपमान हुये, इसलिये झिझकता था कि कह
ही उत्तर न दे दे। इसी असमंजस में दिन बीतते गये। आखिर
वह सवेरे-सवेरे उसके घर पहुँच गया और कहा—"दादा जरा खेत

चौधरी का वेटा है। उत्तर दिया—"चौधरी जी ! आप चलें मैं खाना
कर अभी पहुँचता हूँ।" वह कहने लगा—"देखना देर न करना"। उसका
ार था कि यदि गंगू ने पहुँचने में देर की तो हो सकता है इस बीच में उसका
भी खेत में जा पहुँचे और अकेले में बात करने का अवसर न मिले।

चौधरी के बेटे के पीठ मोड़ते ही, गंगू ने अपनी घरवाली से खाना देने को
। और अनाप-सनाप ग्रास गले में उतार पीछे ही पीछे चौधरी के खेत में जा
वा। चौधरी का बेटा उसे साथ लेकर अलग नहर पर जा बैठा और यूं ही
आरम्भ की—

चौधरी का वेटा—"दादा ! मैंने इसलिये तुम्हें कष्ट दिया है कि सिवा तुम्हारे
कोई ऐसा नहीं दीखता जो मेरी विपदा दूर करे। तुम्हें ज्ञात है कि पिछले
तों जो कुछ मेरा अपमान हुआ, किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं
कुल निर्दोष था। मेरा कोई विचार बुरा न था। मुझे रूपा से प्रेम है। मैं
से दो बातें करना चाहता था।"

गंगू—"चौधरी जी, बुरा न मानें तो कुछ कहूँ।"

चौधरी का वेट—"हाँ-हाँ, कहो दादा ! इसमें बुरा मानने की क्या
त है ?"

गंगू—"आप उससे दो बातें किस अभिप्राय से करना चाहते थे ?"

चौधरी का वेटा—"मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ बस उससे यही पूछता।"

गंगू—"भला चौधरी जी ! कहीं कँवारी लड़कियों से ऐसी बातें भी की
ाती हैं। आपने तो उसे यूं समझा जैसे कोई वेसवा हो। यदि आप ब्याह के
च्छुक थे, तो अपने माँ-बाप से कहते। यदि माँ-बाप से कहने में लाज आती
ा, तो किसी निजी व्यक्ति द्वारा कहलाते। या फिर मुझी से कहते। आप ने
···क्षमा कीजिये, वह ढंग अपनाया, जो लुच्चों-लफंगों का···"

चौधरी का वेटा लज्जित-सा हो गया और आँखें झुका कर बोला—"सच
हते हो दादा ! मुझ से बड़ी भूल हुई। भावुकता में पड़कर मैंने इन बातों को
सोचा और वह कुछ कर बैठा, जो न करना चाहिये था। अब मैंने तुम्हें
सी आशा पर कष्ट दिया है, कि तुम मेरी सहायता कर कसते हो। मेरा यह

घब्बा मिटा सकते हो।

गंगू—"फिर बताइये मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?"

चौधरी का बेटा—"पहले तो मेरे बाप से कह कर मुझे क्षमा ।दलव
स घटना को इतने दिन हो गये हैं, पर उन्होंने आज तक मुझ से सीधे मुं
की। सदा त्यौरी पर बल ही पड़ा रहता है। दूसरी बात यह है कि चाच
न भी मेरी ओर से साफ़ करो और मेरे लिए उनसे कहो।"

गंगू सोचने लगा और कुछ क्षण बाद बोला—"बहुत अच्छा, मैं च
से बात करूँगा, और मुझे आशा है कि वह मेरी प्रार्थना स्वीकार भ
। किन्तु रूपा के चाचा से बात करना मेरे बस में नहीं। हाँ, मैं इतन
ता हूँ कि बड़े चौधरी जी से यह बात भी कह दूं। यदि उनके मन में
वह स्वयं ही रूपा के चाचा से बात कर लें। पर मुझे आशा नहीं वि
वह मानेंगे। क्योंकि मैं उनके स्वभाव से भली प्रकार परिचित हूँ।
नी ओर से मैं पूरा प्रयत्न करूँगा।"

चौधरी के बेटे के मुख पर निराशा सी छा गई थी। सिर झुकाये बैठा
था कि गंगू जो कहता है ठीक है। कुछ सोच कर बोला—"जो कहते
ा ठीक कहते हो, किन्तु प्रयत्न भी करो मैं तुम्हारा उपकार जीवन-भ
ूंगा।"

उसकी दशा पर गंगू को भी दया आ गई। कहने लगा—"चौधरीजी ह
हटती है। यदि कहीं पहले संकेत भी कर देते तो यह काम ही क्या था
चुटकियों में हो जाता। अच्छा देखो प्रयत्न करूँगा।"

दोनों उठ खड़े हुये और गंगू ने गाँव का रास्ता लिया। गाँव के पास पहुँ
कि चौधरी कंधे पर लठ धरे आता हुआ मिल गया। गंगू ने अभिवा
ा। चौधरी ने हँसते हुये पूछा—"इधर कहाँ से आ निकले गंगू राजा
ने अवसर उचित जानकर पूरी बात सुना डाली और कहा—"चौधरी जी
कों से नासमझी में ऐसी बातें हो ही जाती हैं, वह अब बहुत लज्जित
क्षमा ही कर दें तो अच्छा है। क्योंकि आखिर आपका बेटा है। यदि
नके क्रोध से कहीं निकल गया तो आप क्या करेंगे? लेने के देने पड़ जाय

ाबर का पला-पलाया जवान बच्चा कहाँ मिलता है ? कहावत है, सवा लाख
ने तब एक लाल पले ।"

चौधरी हँस पड़ा और बोला—"सच कहते हो गंगू ! पर उसने बात ही ऐसी
री की, जिसे छोड़ा नहीं जा सकता । उधर उस समय मुझे उसकी माँ के रोने-
टने का विचार आ गया, वरन् मुझे तो ऐसा क्रोध आ गया था कि मैं उसे
र से निकालने पर तुल गया था । इस समय तुम्हारी बात मुझे बहुत भली
गी । यदि वह वास्तव में अपने किये पर लज्जित है, तो मैं उसे क्षमा कर दूंगा
ौर यही समझ लूंगा कि अभी इतना ही दंड पर्याप्त है ।"

गंगू—"धन्य हो, चौधरी जी !"

गंगू ने यह सोच कर कि इस समय लोहा नर्म है, दूसरी बात भी कह डाली ।
हा—"चौधरी जी ! यदि यह नाता भी आप ही ले लें तो क्या हानि है ?"

यह सुनते ही चौधरी की त्यौरी पर बल पड़ गये । गंगू की ओर देख कर
त्तर दिया—"क्या उसने यह इच्छा भी प्रकट की है ?"

गंगू उसके तेवर देख कर सहम गया । मन में सोचा यदि इस समय यह स्वी-
ार करता हूँ तो शायद क्षमा की बात भी बिगड़ जाये । बात को सँभालते हुए
ोला—"नहीं, यह तो अपनी ओर से कहता हूँ । उसने मुझ से कुछ नहीं कहा ।"

चौधरी—"तुम समझदार हो, सयाने हो । सोचो ! जितना अपमान हो
ुका है, इसके बाद यह बात मुंह से निकालना, कितनी अनुचित है । भला मैं
ुम से पूछता हूँ कि क्या तुम यह संदेश रूपा के चाचा के पास ले जाने का साहस
ाते हो ?"

गंगू—"नहीं, मैं तो यह साहस नहीं कर सकता ।"

चौधरी—"तो फिर गंगू तुम मुझे इतना निर्लज्ज क्यों समझते हो ? यदि
टना इतनी घिनौनी न होती तो मैं तुम से भी कहता और स्वयं चाचा से भी
ार्थना करता । किन्तु, अब तुम्हीं सोचो कि यह कहाँ तक उचित है । यदि मैं
ब ऐसी भूल कर बैठूं तो रूपा का चाचा और सब गाँव वाले मुझे क्या कहेंगे ।
ही न कि मेरा वह क्रोध बनावटी था, सब दुनियादारी थी । गंगू ! यदि सन्तान
ो रोका-टोका न जाये तो गाँव में बहू-बेटियों वालों का रहना ही दूभर हो

जाये। यह तो न होना चाहिये कि अपने लगी तो मन पर लगी और लगी तो दीवार पर लगी।"

गंगू हँस पड़ा और वही वाक्य दोहराते बोला—"धन्य हो, चौधरी

बात समाप्त हुई, चौधरी अपने खेतों में चला गया और गंगू गाँव गया। मन में अत्याधिक लज्जित था कि क्यों लड़के के कहने में आव बात मुँह से निकाली, जो इस समय यूँ चौधरी के सम्मुख हल्का होना पर

चाचा अपने छप्पर के नीचे चारपाई पर पड़ा कली पी रहा था। तालाब पर कपड़े धोने गई हुई थी। रूपा आँगन में सीने-पिरोने और काढ़ काम लिए बैठी थी, और धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। इतने में चम्प पहुँची, रूपा उसकी ओर देख कर मुस्कुरा दी और बोली—"बड़ी आयु है अभी-अभी याद कर रही थी।" चम्पा हँसते हुए साथ वाली चारपाई प गई और पूछने लगी—"चाची कहाँ है ?"

"कपड़े धोने गई है, तालाब पर।" यह कह कर रूपा फिर गुनगुनाने और कढ़ाई में लग गई।

चम्पा—(हँसकर) "देखो ! तुम गाने और काढ़ने के दोनों काम अपने कर रही हो, और मैं हूँ कि बैठी मुँह तक रही हूँ। रूपा हँस पड़ी और बोली

चम्पा—"जो कुछ गुनगुना रही हो मुझे भी सुनाओ मैं सुनती रहूँगी, ढ़ती रहना।"

रूपा—(हँसकर) "फिर बताओ क्या सुनाऊँ ?"

चम्पा—"बस यही सुनाओ, जिसमें तुम आकर आनन्द से झूम रही ह

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी, "यदि सुनाया तो तुम्हारा मज़ा किर जायेगा।"

चम्पा—(हँसकर) "नहीं होता। मुझे यह धुन बड़ी प्यारी लग रही

रूपा—"ज़रा स्वर से एक फ़ारसी का पद्य गाने लगी।"

चम्पा की त्यौरी चढ़ गई। बोली—"अरी ! फ़ारसी बघारने लगी है

रूपा हँस पड़ी—"न कहती थी कि तुहारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा

चम्पा—"अच्छा, एक बार मुझे इसका अर्थ समझा दो, फिर गाओ ाये जाओ। यह धुन बड़ी प्यारी है।"

रूपा—(हँसकर) "इसका अर्थ यह है, कि मेरे प्रियतम की मेरे प्रति अ ानी ने, जिसकी मुझे कभी आशा न थी, मेरा मन तोड़ दिया है। जिसके परि वरूप अपनों और परायों के आगे मेरी दुख और दुर्भाग्य की कहानी बहुत ो गई है।"

चम्पा की जुबान से अनायास 'हाय' निकल गई और बोली—"कितन ं कहा है और कितना दुखी होगा कहने वाला।" रूपा की आँखें भर अ कहने लगी—"चम्पा ! दुनियाँ में सुखी कोई भी नहीं।"

चम्पा—"सत्य है, किन्तु इससे बढ़ कर कोई और दुख नहीं कि जिस ं निबाह की आशा हो वही आँखें फेर ले। मुझे इसी विषय का एक दोह ा गया—

साजन अखियां फेरीं, मेरी बात न पूछे कोय।
दुर दुर करें सहेलियां, मैं मुड़-मुड़ देखूं तोय।

रूपा—"हाय, क्या सुन्दर कहा है। किन्तु मेरे सुनाये हुए पद्य में कहने की दशा अधिक दुखी है। वह यूं कि यहां तो प्रियतम से उलाहना करके की कुछ भड़ास तो निकल गई, पर वहां तो इसका स्थान ही नहीं। बस

ही दुर्भाग्य पर रोना, फिर यह कि साजन का नाम तक भी होठों पर नहीं आ
चम्पा झूम गई—"बिल्कुल सत्य है। अच्छा, तो फिर सुनाये जाओ। तु
धुन भी करुणामय है।" रूपा फिर गाने लगी।

चम्पा झूम रही थी। रूपा अपनी धुन में बार-बार गाये जा रही थी। गालों पर लगातार आँसू ढलक रहे थे। इतने में चाचा उठकर आया और ही से पूछता हुआ आया—"रूपा कितना सुन्दर कहा है।" रूपा ने सा आँचल से शीघ्र आँसू पोंछे। चाचा भीतर आ खड़ा हुआ। रूपा बोली—' 'तस्नीम' है कहने वाला चाचा! बहुत थोड़ा जिया वह।" चाचा ने जाँघ हाथ मारा और बोला—"सच कहती हो रूपा।"

अभी यह बात हो ही रही थी कि आँगन का द्वार खटाक से खुल गर चाचा मुड़कर देखने लगा। चाची, धुले हुये कपड़ों का गट्ठर सिर पर उ ड़बुड़ाती हुई भीतर आई। चाचा आँगन से निकलकर फिर चारपाई पर बैठा और मुस्कुराते हुये बोला, 'मैंने कहा, ज़रा यहाँ आओ तो। कहाँ चली ीं तुम?" चाची घबराई हुई आई थी, कोई उत्तर न दिया। कपड़ों का सिर से पटक कर भीतर चली गई। फिर हाथ में पंखिया लेकर बाहर आई अ आँगन में खड़ी होकर झलने लगी।

चाचा फिर बोला—"मैंने कहा, कुछ रुष्ट हो क्या? यहाँ आओ!"

चाची वहीं खड़ी-खड़ी माथे पर बल डालते बोली—"क्या कहते हो? भी कहना है, यहीं कह डालो, मैं वहाँ नहीं आती।"

रूपा और चम्पा चाचा-चाची की बात पर आँगन में बैठी हँस रही थीं चाचा ने फिर कहा—ओफ़्फ़ोह, व्यर्थ बिगड़ी जा रही हो। मैं कहता हूँ, जा आओ तो सही। बड़ी अच्छी बात सुनाऊँगा।"

"हाय! चैन नहीं लेने देते। अभी मरती हुई आई हूँ। अभी तुम वाटोगे।" पास जा खड़ी हुई और बोली—"हाँ, लो, कह लो! क्या कह हो।" रूपा और चम्पा हँस रही थीं।

चौधरी को अपनी सद्भावना और चाचा से घनिष्टता के कारण,
ार की सूचना से खेद तो वड़ा हुआ, किन्तु इस सम्वन्ध में उसने क
तचीत करना उचित न समझा, इसलिये कि यह मोतियों के व्यापार
त थी। इस सम्वन्ध में किसी पर दबाव डालने से शंकायें उत्पन्न होने
ता है। दूसरे प्राय: ऐसा भी होता है कि अपनी सूझ-बूझ में कोई का
अच्छा समझ कर किया जाता है, किन्तु अकस्मात वाद में उसमें
प उत्पन्न हो जाते हैं, कि सिवा लज्जा के कुछ प्राप्त नहीं होता।
च में पड़ने वाले को ही बुरा-भला कहते हैं और वही कहावत होत
ायलों की दलाली में मुँह काला। किन्तु अब चूंकि वह सेठ को वच
ाया था, और मन से भी इस नाते को अच्छा समझता था इसलिये उ
श्चय कर लिया कि इस सम्वन्ध में एक बार फिर चाचा के विचार
न्तु समस्या की सूक्ष्मता का विचार करते हुए चाहता था, कि कोई ऐस
सर हो जाये, कि न तो उसे चाचा के घर जाना पड़े और न चाचा
पने घर बुलाने की आवश्यकता पड़े; बल्कि यूं हो कि किसी प्रकार यूं
ल निकले।

ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में दिन बीतते गये। एक दिन वह अप

अतिथि को विदा करके चौपाल की सीढ़ी से कली हाथ में लिये उतर रह
कि सामने से चाचा आता दिखाई दिया। वह रुक गया। पास पहुँच कर अ
अभिवादन हुआ। चाचा कली का रसिया था। हँसते हुए बोला—"कहो चौध
इसमें कुछ है भी कि खाली लिये फिर रहे हो ?" उसने हँसकर उत्तर दि
"क्यों नहीं सब कुछ है। आग है, पानी है।

"और तम्बाकू ?" चाचा ने हँसते हुए पूछा।

"हाँ, हाँ ! तम्बाकू भी है···आओ दो चार सुट्टे लगा लो। बड़ा बढ़िय

चाचा हँसता हुआ चौपाल की सीढ़ियों पर चढ़ आया और दोनों वहाँ ि
हुई चारपाई पर बैठ गये। चौधरी ने कली चाचा के आगे रख दी। पहल
सुट्टा लगा कर चाचा खाँसते हुये बोला—"हाँ, खूब कुटा हुआ है···यहाँ
आये थे ?"

चौधरी—"एक अतिथि, रात से यहाँ ठहरा था। अभी-अभी विदा
है। उसे विदा करके घर जा रहा था कि तुम दिखाई दे गये।"

चाचा कली के सुट्टे लगा रहा था और चौधरी मन में सोच रहा था
कैसे बात आरम्भ करे। इतने में चाचा स्वयं ही बोल उठा—"तुमने सब
सुन लिया होगा ?"

चौधरी समझ तो गया पर बनते हुए बोला—"क्या ?"

चाचा—(कुछ दुखित स्वर में) "यही कि रूपा नहीं मानती। न जाने
लड़की के मन में क्या है ? तुम्हें, अपना मित्र और शुभचिन्तक जान के
अपना दुख बताने में कोई लाज नहीं यद्यपि मैंने और इसकी चाची ने देख-भ
करने में कोई कसर नहीं छोड़ी; फिर भी मन में भाँति-भाँति की शंकायें उ
होती हैं। जिससे, हम दोनों के मन में बड़ा दुख होता है। हमारा सुख-चैन
गया है। और वैसे चौधरी जी ! तुम भी हर बात को परखने वाले हो, अ
मैंने भी इस दुनियाँ की बहुत उड़ाई है। मुझ को तो उस लड़की में कोई दो

मेरी समझ में नहीं आया।"

चाचा की आँखें भर आईं, कहने लगा—"चौधरी! हम दोनों निःसन्त
। हम ने इसी लड़की को अपनी बेटी जान कर पाला है। हमें इससे इत
स्नेह है, जितना किसी को अपनी निजी सन्तान से हो सकता है। जो न
ने सुझाया था, वह बिल्कुल हमारी इच्छानुसार था। पर जो भाग्य मे
वह हो क्योंकर?"

चौधरी सहानुभूति जताते हुए बोला—"मन मैला न करो चाचा! ·
ावान पर भरोसा रखो। हाँ! एक बात कहता हूँ। तुम रूपा की सखियों
को पीछे लगाओ, कि वह उसे समझाती रहें और उसके विचार बदलें। मे
ुमान है कि उसे तुम दोनों से अत्यधिक स्नेह है और वह तुम से अलग न
ना चाहती। यही कारण उसके इन्कार का भी है। यदि उसे यह बात समझ
ये कि तुम उसके इन्कार से बहुत दुखी हो, शायद वह सहमत हो जाये।"

चाचा—"बात तो तुम्हारी है मन को लगने वाली। वास्तव में इस लड़
ो हम दोनों से अत्यधिक लगाव है।

चौधरी—"बस, यह बेल तो उसकी सखियों द्वारा ही मँढे चढ़ेगी। ·
उसके पीछे डाल दो।"

चाचा—"हाँ, ऐसा ही करूँगा और उसकी चाची को भी यही समझाऊँग
स बिचारी का तो निराशा से मन ही टूट गया है। कुछ ही दिनों में आधी
हीं रही।"

चौधरी—"समझाओ चाची को। निराश नहीं होना चाहिये। मेरा
श्वास है कि यह लड़की मान ही जायेगी।"

चाचा—चौधरी! मुझे तो एक उधेड़-बुन और भी लगी रहती है।"

चौधरी—"वह क्या!"

चाचा—"यदि उसने स्वीकार कर लिया अथवा अस्वीकार कर दिया

नहीं कि ऐसी बात करे ।"

चाचा—"वह न हो; किन्तु मैं अब उसके द्वार पर सवाली ब
जाऊँगा ।"

चौधरी—"जब वह समय आएगा, देखा जाएगा । अभी से मन
व्याकुल कर रहे हो ?"

चाचा—"और वह समय कब आयेगा, समय तो सिर पर सवार है ?
सयानी हो गई है । मैं तो कहीं न कहीं शीघ्र उसका ठिकाना करने की
में हूँ । चाहे यह घर हो, चाहे कोई और ।"

चौधरी—"तुमने फिर गंगू से भी बात की ? उसने पूछा कि वह क
रहा है ?"

चाचा—"हाँ, उसे भी बुलाऊँगा ।"

चौधरी—"और देखो, वह बात जो मैंने कही, उसे न भूलना । रूप
सखियों को चिमटाओ, जो उसे समझायें । सेठ जैसा नाता, दिया लेकर ढूं
भी न मिलेगा ।"

चाचा—"निःसन्देह ! इसे तो मैं पहले से जाने हुए हूँ । और देखो
भी इस बात का ध्यान रखना कि पैसे की सहायता के लिये किसी और
को ध्यान में रखो । सेठ के पास मैं कदापि न जाऊँगा ।"

चाचा, यह कह कर उठ खड़ा हुआ और सीधा गंगू के पास पहुँचा ।
घर में न था । उसकी पत्नि को उसे आने पर घर भिजवाने को कहकर
घर चला आया । कुछ ही समय बाद गंगू आ उपस्थित हुआ । पूछा—"
क्या आज्ञा है ?"

चाचा—"गंगू, मैं तुम्हारे उत्तर की बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा
तो मुझे स्वयं तुम्हें बुलाना पड़ा ।"

गंगू—"यूं तो नातों का कोई अभाव नहीं । एक छोड़ बीस ; किन्तु

गंगू—"एक बात पूछूँ चाचाजी ?"

चाचा—"हाँ, हाँ, पूछो !"

गंगू—"मैंने सुना है कि सेठ ने भी संदेश भिजवाया था।"

चाचा—"हाँ !"

गंगू—"फिर तुम ने स्वीकार क्यों न किया ?"

चाचा—"मुझ को और उसकी चाची को तो जी जान से स्वीकार है, किन्तु रूपा नहीं मानती।

गंगू—(आश्चर्य से) "क्यों ?"

चाचा—"मैं क्या जानूं ? बस नहीं मानती।"

गंगू—"बड़ी भूल है चाचाजी ! ऐसा नाता तो ढूँढे से भी न मिलेगा। घर बैठे ही लक्ष्मी आ रही है।"

चाचा—"मैं भी यह समझता हूँ, पर विवश हूँ। और यह बात मुझे अ
लगती कि रूपा की इच्छा के विरुद्ध दबाव डाला जाए। जीवन-भ
तो उसी का होना है।"

गंगू—"बात तुम्हारी बड़ी बुद्धिमानी की है। ऐसा ही होना चाहिए।
अनुभवहीन है। ऊँच-नीच और बुराई-भलाई की बात को इतना नहीं स
ो, जितना आप लोग समझ सकते हैं। प्रयत्न करो कि वह अपना वि
दे।"

चाचा—"मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो उससे इस विषय पर बात
ा। वह तो अपनी चाची से भी नहीं खुलती।"

गंगू—"फिर तुम ने कैसे जाना कि उसने इन्कार कर दिया।"

चाचा—"उसकी चाची ने चम्पा द्वारा पुछवाया था।"

गंगू—"चम्पा से ही कहो कि उसे ऊँच-नीच समझाए।"

चाचा—"हाँ, यह यत्न तो किया जायेगा। पर इसका यह अर्थ नहीं
हाथ पर हाथ धरे बैठे रहो। तुम्हें अपनी दौड़-धूप रखनी चाहिए।"

गंगू—"यह तो तुम कहो न कहो चाचा जी ! मैं अपना कर्त्तव्य कभी
गा। मेरा विश्वास है कि समय से पहिले और भाग्य से अधिक कभी

को कुछ नहीं मिलता।"

चाचा—(ठंडी साँस भर कर) "हाँ गंगू। यह तो सच है। वही होता है, जो भाग्य में हो। देखना चाहिए कि अब हमारे भाग्य में क्या है और रूपा का संयोग कहाँ है ?"

"अधिक चिंता न करो चाचाजी ! भगवान पर भरोसा रखो।" यह क[हते] हुए गंगू ने जाने की आज्ञा ली और चला गया।

इधर रूपा के भविष्य के लिए विचार-विमर्श हो रहे हैं और उधर [भाग्य] का बलवान-हाथ मालवा की राजधानी मांडू में, पुरानी चौपट के उलटने [और न]ई को बिछाने की तैयारी में था और वह सिंहासन तैयारी किया जा रहा [था] जिस पर इस अनाथ लड़की को रानी बन कर बैठना था।

शुजात नामक एक सरदार, हिन्दुस्तान के सम्राट शेरशाह की ओर [से] मालवा पर राज्य करता था। इस बुद्धिमान शासक सम्राट का राज्य-का[ल] पाँच ही वर्ष में समाप्त हो गया। उसके उत्तराधिकारी दुर्बल और अ[यो]ग्य निकले जिसका परिणाम यह हुआ कि कई सरदार अपने-अपने क्षेत्र में स्व[तंत्र] राज्य स्थापित कर बैठे। इन्हीं में शुजात खाँ ने भी राजा की उपाधि [धारण] करके मालवा के राजा की नींव डाली। और बारह वर्ष के बाद अपने बेटे बायज़ीद खाँ अथवा बाज़बहादुर के लिए राज्य-सिंहासन खाली कर [गया]

फिर विचारा वाजवहादुर भी यदि राग-रंग में डूवा था तो कौ
बात थी। यदि वह अवतार-पैग़म्बर भी होता तो भी मालवा का रा
कारण अकवर की राजनीति उसे क्षमा न करती।

वाजवहादुर, पिता के सिंहासन पर वैठा। मालवा की राजधानं
उसके राजतिलक की तैयारियाँ धूम-धाम से आरम्भ हुईं। महलों की
नगर में उत्सव का प्रवन्ध, सेना की पुन: क्रमवंदी, अलग- अलग स
सौंपी गई।

अनाथालयों, विधवा-आश्रमों, विद्यार्थियों और मस्जिदों-मन्दिरों में
किये गये। राज्य-भर में डौंडी पिटवाई गई और ज़िलाधीशों और
राज्यपालों को आदेश भिजवाये गये कि हर कलाकार को विना रोक-
राज-दरवार में आकर संगीत और नृत्य के उत्सव में भाग लेने की खुल्ल
अनुमति है। प्रजा को घर-घर में दीपमाला और सहर्ष उत्सव मनाने क
हुआ, जिसका सारा व्यय राज्य-कोष से मिला। राज्य के कोने-कोने
कार राजदरवार में आ कर अपनी कला की परिपूर्णता दिखाने की
करने लगे।

जव से चम्पा और रूपा की वातचीत हुई थी, रूपा का ढंग कुछ व
था। अव वह प्रसन्न दीख पड़ती थी, घर का वातावरण निराशामय
चाचा चाची भी सन्तुष्ट थे।

रूपा, आँगन में गुनगुनाती फिर रही थी कि चाचा कहीं वाहर से प्रस
घर में आया और रूपा को वुला कर छप्पर के नीचे चारपाई पर वैठ
फिर वोला—"रूपा! अभी-अभी डौंडी पिटती सुनकर आया हूँ कि नया
जो गद्दी पर वैठा है, उसका उत्सव होगा। देश के सव गायक और
को दरवार में आने का खुला निमन्त्रण है।"

चाचा के आने से पहले, रूपा की जो प्रसन्न दशा थी, वह यह सुनकर
वदल गई। वह कुछ गम्भीर सी हो गई और सोचने लगी, 'यह सूचना
चाचा का क्या अभिप्राय है।' किन्तु इससे पूर्व कि वह कुछ पूछती,

क जानने वालों का बड़ा मान और आदर करता है। राजकुमार होने
ही बड़ा नाम पाया है। प्रजा को अब तक ऐसा राजा न मिला था।"
ौन सब सुन रही थी, और सोच रही थी कि अब चाचा आगे क्या
ाचा ने जब देखा, कि वह टस से मस नहीं हुई तो कहने लगा—
ा कुछ भी नहीं कहतीं ?"
ा क्षण-भर रुक कर गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैं क्या कहूँ, चाचा ?
ह राजा ऐसा ही जैसा तुम कहते हो।"
—"तो फिर तुम्हारा क्या विचार है ?"
—(चौंक कर) "मेरा क्या विचार होगा चाचा ?"
ा उसकी यह रुखाई देखकर घबरा सा गया। झिझक-झिझक और
क कर कहने लगा—"मेरा···मेरा आशय···यह है···कि···कि···हम-
लें इस दरबार में।"
बात का ढंग तो पहिले ही समझ रही थी, किन्तु अब बात के स्पष्ट
से उसका मन कुछ बैठ सा गया, मुख पीला पड़ गया, होठ सूख गये
से बोली—"चाचा! तुम चाहते हो कि मैं भी दरबार में जाकर गाऊँ?'
ा—(दबी जबान से बोला) "क्या हानि है ? ऐसे अवसर तो जीवन
भाग्यशाली को ही मिलते हैं।" रूपा के मुख पर कुछ अप्रसन्नता-स
। वह यह बात चाचा के मुख से सुनना न चाहती थी। व्यंगपूर्वक
-"सौभाग्य तो वह कहलाता है, जो किसी एक-आध को अकस्मात् मि
जहाँ सैकड़ों-हजारों भाग्य परखने को आये हों, वहाँ उसे सौभाग्य क

सके तेवरों और बातचीत के ढंग से चाचा समझ तो गया था कि व
ुझाव को भला नहीं समझ रही, किन्तु अब चूँकि बात चल निकली
चाचा की यह इच्छा भी थी कि वह दरबार में अपनी निपुणता दिखा
र वह अड़ बैठा। उत्तर दिया "सौभाग्य वही तो कहलाता है, जो सैंकड़
ों में से किसी एक को प्रदान रे।"

दृष्टि बस मुझ ही को चुनेगी ।"

चाचा—"क्यों नहीं, प्रकृति ने जो श्रेष्ठता तुम्हें प्रदान की है, मैं ही जानता हूँ रूपा ! तुम अपने मूल्य से इतनी ही अपरिचित् कि कस्तूरी-मृग अपनी नाभि की कस्तूरी से ।"

रूपा निरुत्तर-सी होकर चुप हो गई । मन में दुविधा हो गई र्थ क्या नयी विपदा-सी आ पड़ी । चाचा ने बड़ी देर तक उसकी अ उत्तर न पाकर, फिर कहा—"बोलो, तुम्हें वहाँ जाने में क्या आपत्ति

रूपा—"चाचा ! बुद्धिमानों ने कहा है कि राजाओं से निकटता अपने प्राण और सम्मान को संकट में डालना, है । राजा, जोगी, आग न चारों की रीत बड़ी उल्टी है । इन से अनुराग न बढ़ाना चाहिए वर हीं ।"

चाचा—"मैं इस विचार से तुम्हें नहीं ले जा रहा कि राजा से नि मित्रता प्राप्त हो । बल्कि इस ध्येय से लिए जा रहा हूँ, कि तुम अप कला की प्रशंसा पा सको । और जो सम्मान तुम्हें प्राप्त होगा उसका भाग मुझे ही पहुँचेगा । क्योंकि मैंने तुम्हारे लिए बहुत परिश्रम किया है रूपा ! उस हीरे के हीरा बनने से क्या लाभ जो खान से बाहर न निकल

रूपा—"चाचा ! किस भ्रम में पड़े हो । राजाओं के यहाँ, धरती से पत्थर के टुकड़े और सीप से निकले दोनों का तो मान है, क्योंकि इन्हें ही मोती कह कर राजमुकट की शोभा बढ़ा ली जाती है परन्तु मनुष्य और कला को वहाँ कोई नहीं पूछता ।"

चाचा—"नहीं रूपा, तुम नहीं जानतीं कि यह राजा कलाकारों को आँखों पर बिठाता है ।"

रूपा—"हाँ, सम्भव है कि एक समय सिर आँखों पर बिठाले और ही क्षण तुरन्त बाणों से छलनी भी कर डाले । राजाओं को न कोई प्रसन्न

र उठने वाले ही समय से पहले नष्ट हो जाते हैं। बड़ा होने में
ते हैं, और छोटा रहने में दुख दूर रहते हैं। चाँद-सूरज को ही
रण, इन्हीं को लगता है और तारे बचे रहते हैं। चाचा थोड़े ह
ी कुशलता है। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि यह विचार
री रूपा, इस फूस की छत्तों की साया के तले, कच्चे घर और
ो के पावों में रह कर, जिस चैन सुख से जीवन बिता रही है;
; प्रर्याप्त है।"

यह बात चल ही रही थी कि चाची बीच में ही टपक पड़ी और
के सामने यूँ हाथ जोड़े बैठी देखकर रूपा से बोली—"क्या बात
रहे हैं तुम्हारे चाचा ?"

चुप रही, और आँखें झुका लीं। चाची ने फिर कड़क कर पूछ
ाती क्यों नहीं ?"

ने उसी भाँति आँखें झुकाये धीरे से उत्तर दिया—"चाचा कहत
के दरबार में चलो !"

ो—(बिगड़कर) "राजा के दरबार में किस लिए ?"

—"गाने के लिए।"

ो का पारा चढ़ गया, और चाचा को सम्बोधन करके कहने लगं
ाड़ों में और स्वप्न देखे महलों के। मैं पूछती हूँ, तुम्हारी बुद्धि में
ो नहीं आ गया। देखना, धक्के देकर निकाल दिए जाओगे, धव
ो गया धुन सवार हो गई है। 'कहाँ राजा भोज, कहाँ कँगला ते
ूसरी डाँट चाची ने रूपा को पिलाई—"उठ री यहाँ से, क्यों बैठी है
ा पहले ही रूपा की बातों से क्षुब्ध हो रहा था। अब अपनी
उसकी हठ पर चिन्तित था, कि चाची की जली-कटी बातों ने
ानी के छींटों का काम किया। मन में क्रोध उत्पन्न होने के स्थान

जिसका मुझे खेद है। मैं अपनी मूर्खता पर लज्जित हूँ।"

आँसुओं की कुछ मोटी-मोटी बूँदे चाचा की आँखों से उबल क
टपक गई। चाची यह देख कर ठगी सी खड़ी रह गई। मुख फीका
होंठ सूख गये। उसे इसका विचार तक भी न था कि उसके मुँह से
साधारण शब्द उसके मन को चोट लगायेंगे। चाचा घुटनों में सिर
गया। चाची खड़ी तक रही थी। आँख तक न झपकती थी। असमंज
क्या करे और क्या न करे ?

रूपा यह सहन न कर सकी। चाचा के पाँव में सर रख दिया, औ
सिसक कर रोने लगी। चाचा और चाची दोनों ने उसे बड़ी कठिनता से
हाथ जोड़कर चाचा के सामने बैठ कर कहने लगी—"चाचा मुझे क्ष
। मुझ से भूल हुई। मैं दरबार में चलूँगी, मैं नाचूँगी, मैं गाऊँगी।
इच्छा के विरुद्ध बाल भर इधर से उधर नहीं हो सकती। तुम ने मु
पोसा, जीवन प्रदान किया। चाचा ! मुझ पर तुम्हारे बड़े उपकार हैं
कि मेरे शरीर का कण-कण बँधा पड़ा है।" हिचकियाँ ले लेकर रो
और कहे जा रही थी—"चाचा ! प्राणों को न्योछावर कर सकती
तुम्हारी अप्रसन्नता सहन नहीं कर सकती। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ क
हूँ ! मुझे क्षमा कर दो।"

चाचा का हृदय भर आया। उसके बँधे हाथों को लेकर चूमने लग
लगातार रोये जा रही थी। चाची ने बढ़कर उसकी बाँह थाम ली औ
कर भीतर की ओर ले चली।

सत्य हठीला है जो मुझे नहीं छोड़ता।" दोनों हँसने लगीं। चम्पा फिर
ो—"तुम्हारा अर्थ यह है कि यदि वह सत्य तुम्हें छोड़ दे तो तुम उससे
ारा पाने पर प्रसन्न हो।"

रूपा–"बड़ा दोषी है वह व्यक्ति, जो सत्य से छुटकारा पाने में प्रसन्न हो।"

चम्पा—तुम्हारा तर्क अनोखा है कि जिस सत्य ने तुम्हें दुखी बना रखा है,
ा छुटकारा भी नहीं पाना चाहती।"

रूपा—"तुम्हें मेरा तर्क इस कारण से अनोखा लगता है, कि तुम इस दुख
ानन्द को नहीं अनुभव कर सकती।"

चम्पा—"दुख की पीड़ा और कड़वाहट को तो सभी जानते हैं, किन्तु दुख
आनन्द आज तुम्हीं से सुना।"

रूपा—"हाँ चम्पा ! दुख में बड़ा आनन्द है, ऐसा कि इस पर हज़ारों सुख
ावर किये जा सकते हैं।"

चम्पा—"बताओ तो सही वह आनन्द है क्या ?"

रूपा—"आनन्द बखान नहीं किया जा सकता ?"

चम्पा—"क्यों नहीं किया जा सकता ?"

रूपा—"अच्छा बताओ ! फूल की सुगंध में क्या आनन्द है और तुम वाह
क्यों करती हो ?"

चम्पा—इसलिए कि मन-मस्तिष्क को ताज़गी मिलती है और मुँह से वाह
निकल पड़ती है।"

रूपा—बस, उत्तर मिल गया। दुःख का आनन्द, वह आनन्द है, जिससे
ही समय में दो प्रकार के आनन्द मिलते हैं, इसलिए मन से वाह निकलती
ौर मुँह से आह। और यह केवल समझ का फेर है, वरन् आह और वाह
ोई अन्तर नहीं—आह, वाह है और वाह, आह।"

चम्पा अनायास कह उठी—"वाह रूपा ! क्या बात कही है आनन्द आ

चम्पा --"और कब आयेगा वह समय ?"

रूपा—"यह नहीं बता सकती। मैं भी प्रतीक्षा कर रही हूँ, तुम भी प्र
।"

चम्पा ने करुण दृष्टि से देखा और खेद प्रगट करते हुए बोली—'
! दीवानी हो गई हो दीवानी।"

रूपा प्यार से उससे लिपट गई और माथा चूमकर बोली—"मेरी प
ा। तुम्हारे प्रेम और सहानुभूति की यही माँग होनी चाहिए, किन्तु यह
को यदि इस दुनिया से दीवाने निकाल दिये जायें तो फिर इसमें रह
गा ? यह सारी चहल-पहल इन्हीं के कारण तो है।"

चम्पा—"हमने तो तुम्हें छोड़कर और कोई दीवाना नहीं देखा। और
दीवानों की वृद्धि हो जाए तो दुनिया में चारों ओर मिट्टी उड़ने लगे।"

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी—"मेरी भोली बहिन ! यदि तुम आँखें ख
न देखो तो दीवानों का क्या दोष ? इनसे तो संसार भरा पड़ा है।

चम्पा—(आश्चर्य से) "वह कौन से दीवाने हैं जो हमें दिखाई नहीं देते

रूपा—(हँसकर) "बड़ी-सेनायें एकत्र करने वाले, देशों को विजय क
, धन-दौलत इकट्ठी करने वाले, मान-मर्यादा के पीछे प्राण लगा देने वा
ों और समुद्रों से हीरे-मोती समेटने वाले, महल बनाने वाले, बाग़ लगव
, फूलों के यौवन से बसंत उत्पन्न करने वाले, कोमल और सुन्दर ललना
ान बहलाने वाले···कहाँ तक गिनवाऊँ, अंतहीन है—यह सभी दीवाने
हैं चम्पा !"

चम्पा—(व्यंग से) "अच्छा, तो यह सब दीवाने हैं तुम्हारे निकट ?"

रूपा—"दीवाने नहीं तो और कौन हैं ? जिस घर में रहना न हो उ
ने सँवारने में मर मिटना, दीवानापन नहीं तो क्या है ?"

चम्पा का मुख झुंझलाहट से लाल हो गया। झल्ला कर बोली—"हट
सिर खपाये तुमसे ?"

रूपा ठहाका मार कर चम्पा से लिपट गई और चम्पा भी हँसने लगी।

चम्पा—"दरबार के लिए कब जाओगी ?"

ा—"वस अब तो सवेरे शाम चलना ही चलना है। आज चाचा-च
कुछ कपड़ा इत्यादि लेने गये हैं। क्या कहूँ चम्पा! मन कुछ स्वयं
ाता है और यूं प्रतीत होता है कि यह गाँव फिर देखना भाग्य में
।"

म्पा—"तुम्हारे बाद मैं भी चली जाऊँगी। देखो अब कब मिलना है
ाशीर्वाद है कि तुम सदा सुखी रहो।"

म्पा का स्वर भर्रा आया और आँखें भर आईं। रूपा भी प्रभावित
न रह सकी, आँखों से मोती छलक पड़े और लिपट कर कहने लगी
मुझे कभी न भूलना। मेरा जीवन-नैया ऐसी नदी में हिचकोले खा
सका कोई तट नहीं दीखता। देखें इसका खेवनहार कब मिलता है
ब और कहाँ किनारे लगती है। सच जानो, मैं तो तुम्हें कभी न वि
।

दोनों रोने लगीं।

वह दिन भी आ ही गया कि रूपा को चाचा के संग जाना था। से
या रथ साँझ को ही पहुँच गया था। गाँव से राजधानी मांडू का फ़
भग डेढ़ मंजिल था। सवारियाँ प्रायः रात को मार्ग में पड़ाव करके
दोपहर से पहले पहुँचती थीं। किन्तु सेठ के नागौरी बैलों की जोड़ी
चली हुई उसी दिन, दिन ढले से पहले ही पहुँचाने वाली थी। गाड़
रात ही को पहले पहर रथ के पहियों में तेल लगा कर सब सामान

ार लिया था। बैलों को भूसी डाल दी और खाना खा कर चौपाल में ल
ान कर सो गया।

रूपा के घर में लगभग रतजगा ही रहा। आधी रात तक सखियाँ बै
हीं और चाची यात्रा के लिये पराठे और पूड़े तलती रही। जब इन कामों
ावकाश मिला और रूपा की सखियाँ भी अपने-अपने घरों को चली गई
ोढ़ने-बिछाने और पहिनने के कपड़ों की सँभाल आरम्भ हुई। चाचा और रू
ं कपड़े अलग-अलग गठरियों में बाँधे गये। ओढ़ने-बिछाने का सामान अल
पेटा गया और खाने-पीने के बर्तनों को अलग बोरी में सी दिया गया।

चाचा यद्यपि रथवान को खाना और बैलों को चारा दिला कर निश्चि
ोकर छप्पर के नीचे चारपाई डालकर लेट गया था, किन्तु आधी रात तक
पा की सखियों के हँसने-बोलने के शोर में नींद न आई। जब उनके जाने
छ देर बाद आँख झपकी तो रूपा के रोकते-रोकते चाची आ धमकी। बोल
ए! मैं कहती हूँ क्या सारी जवानी की नींद आज ही रात को पूरी करोगे। कु
ता भी है घर में क्या हो रहा है?"

चाचा घबरा कर उठ बैठा और पूछने लगा, "हैं! क्या बात है?"

रूपा ने आगे बढ़कर चाचा को सांत्वना देते हुए कहा—"कुछ नहीं चाचा
ब कुशल है।"

चाचा ने सन्तोष का साँस लिया और चाची से बोला—"तुमने तो मु
बरा दिया। हाँ बताओ क्या बात है?"

चाची-चाचा के सायंकाल ही पड़े रहने पर मन ही मन कुढ़ रही थी
ली—"लगे अब बात पूछने। रात-भर तो करवट न ली।"

चाचा—"तुम यूं ही बिफरी जा रही हो, मैं सोया कब हूँ?"

चाची—"लो और सुनो, यह खुर्राटे मैं मार रही थी? अच्छा अब कृप
रो, उठो!"

रूपा बीच में बोल पड़ी—"चाची! क्यों इन्हें तंग कर रही हो। क्य

रूपा को हँसी आ गई। चाचा भी हँस पड़ा। बोला—"देखती हो रूपा। ती चाची का नखरा ?"

रूपा और चाचा दोनों हँस रहे थे कि चाची फिर चिढ़ गई—"मैं कहती उठोगे कि नहीं ?"

चाचा—(हँसकर) "भाग्यवान्! यह तो बताओ उठकर करूँ क्या ?"

चाची—"यह अपना सामान देख लो! बिस्तर, कपड़े, बर्तन, रास्ते के ए यह खाना सब कुछ तैयार है।"

"और तम्बाकू ?" चाचा ने कहा।

चाची—"यह देखो! अब सुध आई। लगे पूछने, तम्बाकू, कोयले को··· कहती हूँ मैं नहीं जानती इस अला-बला को। उठकर स्वयं सँभालो।"

चाचा हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ। आकाश पर दृष्टि डाली तो प्रभात का रा चढ़ आया था, बोला—"ऊफ़ रूपा! यह तो सवेर हो गई।"

चाची को अनायास हँसी आ गई, रूपा की ओर मुंह करके बोली— "ढिठाई न्यौछावर जाइये। इस पर तो यूं कहते हैं कि मैं नहीं सोया और तारा चढ़ने ा अब पता चला।"

चाचा हँसता हुआ भीतर चला गया और अपने तम्बाकू के सामान का ोला निकाल लाया इतने में चाची भी नर्म पड़ गई और नम्रता से बोली— 'रूपा के चाचा! देखना शीघ्र ही पलटना। मेरी तो अब इस घर में जी बड़ा बरायेगा।"

रूपा और चाचा अनायास हँसने लगे और चाची भी मुंह फेर कर मुस्कराने लगी।

चाचा—"सुनती हो रूपा! तुम्हारी चाची एक तमाशा है। बस, क्षण में तोला क्षण में माशा।"

र्दा गिरा कर दूसरी ओर मुँह फेर लिया और मुड़कर गाँव की ओर देखने
। पहियों का हर चक्र उसे अपनी जन्म-भूमि से दूर लिये जा रहा था।
ो रही, तकती रही, यहाँ तक कि दृष्टि और गाँव के बीच धूल ने एक
: सी तान दी। भीगी पलकें मूंद कर भीतर हो गावतकिये से पीठ लगा-
बैठ गई और विचारों में डूब गई।

साँप की भाँति फुंकारें मारते, धूल बरसाते नागौरी, मंजिल को लपेटते
जा रहे थे। रथ के घुँघरूओं की झंकार, जंगल में यूँ गूँजती मानो बाज़ की
ार पर झपट से सीटियाँ बज रही हों। रूपा मन-ही-मन बातें करने लगी,
ा! नाव छूट गई है और धार पर वह निकली है...देखें कहाँ थमे...राम
किसी भँवर में जा पड़ेगी या किनारे जा लगेगी...और वहाँ क्या दिखाई
।"

सहसा उसी सपने का विचार आ गया। आँखें स्वयं बंद हो गईं और
ते हुए भी स्वप्न देखने लगी। वह सुन्दर युवक सामने खड़ा है, श्वेत रेशम
ास्त्र, सिर पर हीरों से जड़ित ताज, गले में मोतियों की माला, कमर में
त कटार, होठों पर मुस्कान और ऐसी तीव्र दृष्टि से देख रहा है कि देखे
बनती...शरीर यूँ पिघला जा रहा है जैसे सूर्य की किरणों से बर्फ़। एका-
उसने आगे बढ़कर कंधे पर हाथ रख दिया...सनसनाहट से प्राण घुलने
घबरा कर आँखें खोल ही दी, किन्तु शरीर की यह दशा हो गई। ठंडा,
ाण, बिल्कुल मिट्टी। बेसुध हो कर फिर आँखें बंद कर के लेट रही।

रथ सपाटे भरता चला जा रहा था। चाचा रथवान से पूछने लगा—"क्यों
! बैलों को नहारी कहाँ दोगे? बहुत मंजिल मार चुके हो।" रथवान ने
र दिया—"बस अगले पड़ाव पर, फिर दूसरी ठांड में मांड़।"

रूपा ने पर्दा हटा कर देखा। सूर्य अभी सिर पर न पहुँचा था। चाचा ने

रही। रथ चला जा रहा था। थोड़ी देर में कुत्तों के भौंकने की आवाजें आने लगीं। समझी कि पड़ाव आ गया। पर्दा हटा कर देखने लगी। कुछ दिखाई न दिया। पूछा—"क्या पड़ाव आ गया चाचा ?"

चाचा—"हाँ बेटा ! आ गया।" वह बाहर झुक कर झाँकने लगी।

रूपा—"कहीं दिखाई तो देता नहीं।"

रथवान—"सामने वाले पेड़ों में है, रानी जी !"

रानी जी के शब्दों पर मुस्कुराने लगी। मन-ही-मन बोली 'रथ में सवार हूँ इसलिये रानी भी हूं।'

रथवान ने नागौरियों की रासें खींच लीं। पड़ाव आ गया था। पेड़ों छाया में रथ रोक दिया गया और तीनों उतर पड़े। चाचा ने पेड़ों के नीचे ओर दरी फैलाई। रूपा थोड़ी देर टहलती रही। रथवान ने घी गुड़ की पर्त अलाव पर रख दी। जुटे जुताये बैलों को झाड़ा, कंधों पर मालिश की। इ में ओंटी तैयार हो गई। नाल से पिला कर, बैलों को जूए से खोला और ओर पेड़ों की छाया में बाँध कर दाना-चारा डाल दिया। इस बीच में र और चाचा मुँह-हाथ और खाने-पीने के बर्तन धो-धुला कर तैयार हो चुके थे सबने बैठ कर खाना खाया। चाचा ने अपनी कली तैयार की, रथवान ने अप गुड़गुड़ी सँवारी और दोनों बैठकर पीने लगे।

इसी स्थान पर चौदह-पन्द्रह व्यक्तियों का एक और काफ़िला पहले से रु हुआ था। इन में कुछ पुरुष थे और कुछ स्त्रियाँ। इनके साथ के कुछ साजों ह स्पष्ट था कि यह लोग नायक और गायिकायें हैं। जब से रूपा रथ से उत थी वह देख रही थी कि सब की दृष्टि बार-बार उसकी ओर उठ रही है। खा पी कर उठी और इन महिलाओं की ओर बढ़ी, जो पुरुषों से अलग कपड़ बिछाये बैठी थीं। पास पहुँच कर अभिवादन किया और बैठ गई। महिलाय प्रसन्न-चित्त मिलीं। रूपा ने बातचीत आरम्भ की। वह लोग भी उत्सव में सम्मिलत होने के लिये मांडू जा रहे हैं। रूपा के साथ चूंकि गाने-बजाने का कोई सामान न था इसलिये उसके सम्बन्ध में यह न समझ सकीं, कि वह भी

एक ने पूछा—"बीबी ! तुम मांडू में ब्याही हुई हो ?"

रूपा मुस्कराने लगी। उत्तर दिया—"नहीं।"

दूसरी ने पूछा—"वहाँ कोई नातेदारी है ?"

रूपा फिर मुस्कराते हुए बोली—"नहीं।"

पहली ने फिर पूछा—"तो मांडू से कहीं आगे जाओगी ?"

रूपा को हँसी आ गई। फिर उत्तर दिया—"नहीं।"

उसकी हँसी और आँखों में चंचलता से महिलायें कुछ आश्चर्य में पड़ गईं और सब उसकी ओर ताकने लगीं। एक जो उनमें बड़ी थी और थोड़ी दूर तकिए पर सिर रखे पड़ी बातें सुन रही थी, न रह सकी। उठकर रूपा के पास जा बैठी और साथ वालियों से बोली—"तुम सब चुप रहो, मैं करूँगी इन बीबी से बातें।"

सब हँसने लगीं। रूपा को भी हँसी आ गई। कहने लगी—"बहन ! मैं यही तो चाहती थी कि तुम भी आ बैठो। मैं तो आप लोगों से ही मिलने के लिए आई थी।"

वह स्त्री लज्जित हो गई और बोली—"मुझे क्षमा कर दो। वास्तव में मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं लज्जित हूँ।"

रूपा—(हँसकर) "मेरा तात्पर्य यह न था बहन कि तुम से मैं क्षमा मँगवाऊँ।"

वह स्त्री—(वैसे ही लज्जित स्वर में) "तुम्हारा यह अभिप्राय हो या न हो पर मैं तो समझती हूँ कि मुझसे भूल हो गई। इस अशिष्टता का कारण तो केवल थकान है। हम लोग बहुत दिनों से यात्रा में हैं। मैं इस थकान को सब से अधिक अनुभव कर रही हूँ। इसीलिए वहाँ पड़ी लेटी रही।"

रूपा—(बीच में ही) "यात्रा होती ही ऐसी है। आप लोग तो बहुत दिनों

कि मेरे मुँह से ऐसी बातें क्यों निकलीं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि इस
छोड़ दीजिये।"

उस स्त्री को रूपा का सभ्य, बातचीत का ढंग बड़ा भला लगा। म
ने लगी कि लड़की अच्छी शिक्षा पाए हुए है। हँस कर चुप हो गई,
ड़ी देर बाद बोली—"बीबी ! फिर तुमने यह न बताया कि तुम कह
ा हो ?"

रूपा सोचने लगी; कहाँ तक छिपाऊँगी इनसे। यहाँ न कहूँगी, पर
ाकर इन्हें स्वयं पता चल जाएगा।

उसने उत्तर दिया—"मांडू"

वह स्त्री—"किस कारण से ?"

रूपा फिर सोचने लगी। फिर दृष्टि झुकाकर बोली—"जिस कारण से
ा जा रहे हैं।"

यह सुनकर सब प्रसन्न हुईं। उस स्त्री ने हर्ष प्रगट करते हुए हँसकर
ह्र बीबी ! तुम इतनी देर से अपने आपको छिपा क्यों रही हो ?"

रूपा हँस पड़ी। संकोच से आँखें नीची करके विनम्र हो कहने ल
च जानिये आप से यह कहते हुए लाज और झेंप सी अनुभव होती थी क
प मुझसे बड़ी हैं और मैं आपके आगे एक शिशु से बढ़कर नहीं।"

इस उत्तर पर सब प्रसन्न हुईं और वह स्त्री जो अभी बातचीत कर
, रूपा के व्यवहार से प्रभावित होकर प्यार से लिपट गई और उसका
कर बोली—"जीती रहो ! इसमें लज्जा-संकोच की कौन सी बात
व है, प्रकृति ने तुम्हें, अपनी ऐंड़ी देखूँ, जैसी सज-धज दी है वैसी क
पुरात। भी दी होगी मुझे विश्वास है, होगा भी ऐसा ही।"

रूपा शरमा गई। उसने कोई उत्तर न दिया। कुछ क्षण के बाद
ी—"एक बात से मैं कुछ चिन्ता में हूँ। मेरे साथ साज़िदों का कोई प्र
हीं है।"

वह स्त्री, उसका अभिप्राय समझ गई। तुरन्त बोली—"घबराओ
बी। हमारे साज़िदे तुम्हारे लिए उपस्थित हैं। वैसे दरबारी साज़िदे

रहते ही हैं। तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो।" रूपा को सन्तोष हो
ह कृतज्ञता पूर्वक उसकी ओर देखने लगी। इतने में रथवान पुकार
'रानी जी ! सूरज ढल गया है। मैं रथ जोड़ता हूँ।"
के मुँह से रानी जी सुनकर रूपा लजा-सी गई और आज्ञा लेकर उठ खड़ी

तैयार हो गया। रूपा और चाचा बैठ गए। रथवान ने रासें सँभाल
तनी पर पाँव धरा ही था कि नगौरी फुँकारते हुए हवा से बातें करने
ह जा, वह जा। रथ मंजिल को चाटता चला जा रहा था। अभी चार
ा शेष था, कि मांडू के विशाल भवन और राजमहल के गगनचुम्बी बुर्ज
देने लगे। रूपा सूरज की ओर के पर्दे छोड़े लेटी हुई थी कि चाचा बोल
'रूपा ! मांडू दिखाई पड़ने लगा।" रूपा एकाएक उठ बैठी और गर्दन
काल कर देखने लगी। ज्यूँ-ज्यूँ रथ नगर के समीप पहुँचता जा रहा
ा भी विशाल होते जा रहे थे और रूपा के मन की धड़कन भी तीव्र
ा रही थी। मन में कह रही थी, 'देख रूपा ! भाग्य उधर ही खींच लाया
र से घबराती थी। राजाओं का साक्षात्कार करना, आग और पानी से
है। न जाने भाग्य क्या दिखाता है ?'
ने नगर में प्रवेश किया तो रूपा ने दोनों ओर के पर्दे उठा दिये।
ीवन में आज पहली बार नगर देखा था। विशाल भवन, बाजारों की
हल और चारों ओर की गहमा-गहमी को देखकर चकित हो रही थी।
मान पर रंग-बिरंगे झंडे लहरा रहे थे। सारा नगर दुल्हन की भाँति
आ था। खुले बाजारों के बीचों-बीच, नहरों का बहना, फव्वारों का
और सजे हुये उपवन, स्तब्ध करने वाले थे।
र ने सराय में प्रवेश किया, और सबने रात भर वहीं विश्राम किया।

रूपा की यात्रा यद्यपि इतनी कष्टप्रद न थी, परन्तु यात्रा फिर य
कुछ तो रात की जागी हुई थी, और कुछ गाड़ी के हिचकोलों से ं
टूट रहा था। खाने से निपट कर लेट गई और लेटते ही सो गई। च
रथवान हुक्का पीते रहे।

रथवान ने प्रातः को जाने की आज्ञा ली। पहियों में तेल डाला।
चारा डाला और थोड़े समय के बाद दोनों सोने के लिये लेट गए। स
की आँख तब खुली, जब सूरज निकल आया था। बाज़ारों में पैदल औ
का आना-जाना आरम्भ हो गया था। गाड़ीवान तड़के ही जा चुका
चाचा कली पी रहा था।

चाचा—"रूपा ! उठो, दिन चढ़ आया है। नहा-धोलो !"

रूपा ने अँगड़ाई ली और उठ बैठी। बोली—"रथवान चला गया

चाचा—"हाँ बड़े तड़के।"

रूपा—"चाचा ! उसके लिए रास्ते में खाने-पीने, और नहारी का
प्रबन्ध कर दिया था ? मुझे तो इतनी थकान हुई, कि साँझ ही से पड़क
न हुई।"

चाचा—(हँसते हुए) "हाँ, बेटा ! तुम तो सो गई थीं। किन्तु मैंने
जाने का पूरा प्रबन्ध करके ही चारपाई से पीठ लगाई। खाने-पीने और
के अतिरिक्त मैंने उसे चलते समय इनाम भी दे दिया।"

रूपा बहुत प्रसन्न हुई और बोली—"चाचा ! यह तो तुमने बहुत ही
किया। रथवान ने रास्ते भर, हमारे आराम का बड़ा ध्यान रखा और

का तो कहना ही क्या ? यदि उसका रथ न होता तो यह यात्रा यूं
ा न कटती ।"

ा—"यही वात है रूपा !"

दुपट्टा ओढ़ कर उठी और सराय के आँगन वाले कुएँ पर आई । वहाँ
ड़ाव वाली स्त्री दातुन कर रही थी । आँखें चार होते ही दोनों मुस्कु-
पा ने वढ़कर अभिवादन किया । उसने प्रसन्न होकर आर्शीवाद दिया ।

ी—"यात्रा तो आराम से कटी ?"

ा—"जी, वहुत आराम से ।"

स्त्री—"कब पहुँच गई थी ?"

ा—"जी, दिन छिपने से पहले ।"

स्त्री—(हँसकर) "तुम्हारे वैल भी बला हैं । वहीं से जो वह फ़र्राटा
उठे तो हम लोगों ने अनुमान लगा लिया था, कि यह साँझ से पहिले
जा खड़े होंगे ।"

ा—(हँसते हुए) जी हाँ ! ऐसा ही हुआ । आप लोग वहाँ से कब चले
ा पहुँचे ?"

स्त्री—"चल तो पड़े थे, तुम्हारे पीछे ही पीछे । किन्तु हमारी सवारियाँ
ा न थीं । आधी रात आ गई थी, जब हम सराय में आये ।"

ा—"दूसरी वहनें कहाँ हैं ?"

स्त्री मुड़ कर सामने संकेत करते हुए वोली—"वह सामने ! चलो वहीं
वैठेंगे ।"

ा—(हँसकर) "बहुत अच्छा ।"

नों मुंह-हाथ धोकर चलने लगीं, तो रूपा को कुछ विचार आया ।
—"कष्ट तो होगा, तनिक मेरे साथ आ जाओ, मैं चाचा से अनुमति ले
वह रूपा की इस वात से वड़ी प्रसन्न हुई और वोली—"चलो, चाचा से
मिल लूं ।"

नों चाचा के पास आईं । रूपा ने चाचा से उसका परिचय करवाया ।
ो ने अभिवादन किया और चाचा ने हँस कर वैठने को कहा । कुछ देर

बातें करने के बाद उस स्त्री ने रूपा को साथ ले जाने की आज्ञा चाही। च
बोला—"ठहरो! पहले नाश्ता कर लें, फिर जाना।" वह स्त्री रोकती ही
पर चाचा ने एक न सुनी, और लपक कर सराय से बाहर हो गया। दोनों ह
लगीं। वह स्त्री चाचा की प्रशंसा करते हुए बोली—"यह मर्यादा कम ही दे
में आती है। अभी तो ढ़ंग की जान-पहिचान भी तो नहीं हुई।" रूपा ने मुस
कर दृष्टि झुका ली और कहा—"यह तो साधारण बात है बहन! जो शि
पिछले पड़ाव पर आपने मुझसे बरती है, मैं तो उसे कभी न भूलूंगी।"

वह स्त्री—"अच्छा बीबी! छोड़ो भी इस बात को। तुमने तो मेरी प्रश
की झड़ी लगा दी।" इस पर रूपा भी हँसने लगी।"

वह स्त्री—(हँसकर) "बहन, अब तक मैंने तुम्हारा नाम तो पूछा ही नह
देखो कितनी मूर्ख हूँ।"

रूपा—(हँसकर) "रूपमती मेरा नाम है। कहते सभी रूपा हैं।"

वह स्त्री—"और जन्मभूमि ?"

रूपा—(हँसते हुए) "देहातन हूँ। एक छोटा सा गाँव है, चाँदनगर।"

वह स्त्री प्रसन्न होकर हँसते हुए बोली—"भगवान नज़र न लगाये, सच
रूपमती हो। तुम्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई हूँ। तुम कल ही तनिक सी बा
में मेरे मन में बस गई थीं।"

रूपा शर्मा कर हँसते हुए बोली—"बहन! देख लो, शिष्टाचार के ना
अभी तक तुम्हारा नाम नहीं पूछ पाई।"

वह स्त्री इस बात पर अनायास हँस पड़ी और लिपट गई। बोली—"मु
गुलनार कहते हैं। सारङ्गपुर की रहने वाली हूँ। किन्तु बात करने का ढंग इतन
नहीं, जितना मेरे सामने बैठी देहातन को है।"

दोनों खिलखिला कर हँस रही थीं कि चाचा तीन बड़े-बड़े दोने लिये, सरा
के फाटक पर दिखाई दिया।

है; वह यह कि तुम्हारे साथ जो साजिन्दे हैं उनमें से दो एक को वहाँ सामान के पास बिठा कर, तुम सब रूपा के साथ यहीं चली आओ। तुम्हारे साथ वाले और मैं सब मिलकर नगर में जायेंगे ताकि ज्ञात करें दरबार में कब और किस ढंग से पहुँचा जायेगा ?"

गुलनार—"बहुत अच्छा सुझाव है आपका, चाचा !"

चाचा—"तो अच्छा शीघ्र करो !"

गुलनार रूपा को लेकर उठ खड़ी हुई। जब वहाँ पहुँचीं तो सब रूपा को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। कुछ परिचय तो पिछले ही पड़ाव पर हो चुका था। अब गुलनार ने रूपा का पूरा परिचय कराया और साथ ही चाचा के सत्कार का वर्णन भी किया। रूपा बीच में ही बोल उठी—"अब यह क्या कथा ले बैठीं आप ?"

सब हँसने लगीं। एक बोली—"बहन ! हम तो गायिकायें हैं। जिसका खाती हैं, उसी का गाती हैं। इस पर एक ठहाका पड़ा। जब यह गूंज ज़रा दबी, तो गुलनार ने चाचा का सुझाव रखा। यह सुझाव, सब को भाया और शीघ्र नाश्ता आदि से निपट कर सब की सब रूपा के यहाँ आ बैठीं। चाचा, उनके पुरुषों के साथ नगर को चल दिया।

नगर में चल-फिर कर यह पता चला कि उत्सव तीन दिन में है। किन्तु इसके अतिरिक्त और कुछ न ज्ञात हो सका। एक व्यक्ति ने, जो महलों से कुछ सम्बन्ध रखता था, बताया कि वह दुर्ग के नक्कारखाने पर जायें, जहाँ का दारोगा इसी काम पर नियुक्त है। वह सब सूचना दे देगा।

दुर्ग के फाटक पर पहुँचे। दूर से देखा कि फाटक के बाहर, घुड़सवारों की एक टुकड़ी, तड़क-भड़क कपड़े पहने, हाथों में भाले सँभाले दोनों ओर खड़ी है। यह लोग ठिठक गये। आगे बढ़ने का साहस न होता था। सोच रहे थे कि क्या करें, कि इतने में दो सवार फाटक के भीतर से निकलते दिखाई दिये। दोनों आपस में बातें करते, धीरे-धीरे इन्हीं की ओर आ रहे थे। पास पहुँचे, तो यह

"श्रीमान् ! हम लोग गायक हैं। दरबारी घोषणा पर यहाँ पहुँचे हैं। हम जानने के लिये उपस्थित हुए हैं, कि दरबार में हमारे आने का क्या साधन ा ?" सवारों में से एक ने पलट कर उँगली का संकेत करते हुए कहा—खो तुम लोग सीधे चले जाओ, सामने वाले सवारों की टुकड़ी का अधिकारी, हें दारोगा जी के पास पहुँचा देगा, जो इसी कार्य पर नियुक्त है।" चाचा र उनके साथी चुप खड़े रह गये। सवार ने फिर पूछा—

"तुम समझे कि नहीं ?"

एक ने कहा—"श्रीमान् ! हमें तो आगे जाते हुये डर लगता है।" दोनों ार मुस्कुराये, घोड़ों की रासें मोड़ लीं और बोले—"आओ।"

सवार सब को लेकर फाटक पर पहुँचे और टुकड़ी के अधिकारी को बताया ह लोग गायक हैं, और दारोगा जी से मिलना चाहते हैं।"

अधिकारी ने विनम्र सम्बोधित किया और कहा—"देखो ! तुम लोग वहाँ :क के भीतर, बाग में ठहरो ! तुम्हें अभी बुला लिया जायेगा।"

आदेशानुसार सब बाग़ में जा खड़े हुए। बड़ा विशाल हरा-भरा उपवन, ा में छोटे-छोटे सुन्दर मार्ग, फव्वारे और भरपूर फूलों की पंक्तियाँ। इसके ों ओर सुन्दर, विशाल-भवन, विचित्र दृश्य उत्पन्न कर रहे थे। नौकरानी : ख्वाजा-सरा तड़क-भड़क के कपड़े पहिने, इधर से उधर फिरते दिखाई हे थे। एक ख्वाजा-सरा घूमता हुआ उनकी ओर आता दिखाई पड़ा। जब पास पहुँचा तो सब अभिवादन के लिये झुक गये। ख्वाजा-सरा मुस्कराया बोला—"आओ !" यह कहकर पलटा और सब उसके पीछे चल दिये। जा-सरा उन्हें एक दो-मंजिला मकान में ले गया। वहाँ हथियार बन्द प्रहरी थे। निचली मंचिल में दारोगा जी के सामने उपस्थित हुये। दारोग़ा एक ो पर तकिया लगाये बैठा था। पेचवान सामने धरा था। दाँये-बाँये उगाल- और पानदान रखे हुये थे। आठ-दस मुन्शी इधर-उधर बस्ते खोले कलमें ों पर रखे बैठे थे। दारोगा के सामने सब अभिवादन को झुके। उसने राते हुये पूछा—"तुम लोग कब आये ?"

चाचा—"श्रीमान जी ! कल सांय-काल।"

दारोगा—"गायक हैं ?"

चाचा—"नहीं, श्रीमान जी ! सजिंदे…"

दारोगा—"तुम्हारे साथ गायिकायें भी हैं ?"

चाचा—"जी हजूर !"

दारोगा—"कितनी हैं ?"

चाचा—"वह भी सात हैं, श्रीमान् जी !"

दारोगा—"कहाँ ठहरो हो ?"

चाचा—"सराय में सरकार ।"

दारोगा ने मुंशियों की ओर देखा और बोला—"इन सबके नाम पते लिख ।" मुंशियों ने सब के नाम, पते तथा हुलिया लिखना आरम्भ किया । ोगा पेचवान की नली मुँह से लगाये धुआँ उड़ाता रहा । जब नाम-पते लिखे तो दारोगा बोला—"देखो ! तुम लोग, अपनी गायिकाओं को साथ लेकर दिन तक यहाँ पहुँच जाओ । तुम्हारा आज ही यहाँ पहुँचना आवश्यक है । ोंकि तुम्हारे लिये दरबार में पहिनने योग्य-वस्त्र तैयार करवाये जायेंगे । यदि आज न पहुँचे तो तुम्हें दरबार में आने की अनुमति न मिलेगी ।"

यह कहकर दारोगा मुंशियों से सम्बोधित होकर बोला—"इन्हें प्रवेश पत्र दो ! मुंशियों ने आज्ञा का पालन किया ।

दारोगा फिर इन लोगों से बोला—"यह प्रवेश-पत्र तुम फाटक पर दिखा र भीतर आ सकोगे । सराय में जो तुम्हारा सामान है, उसके पास एक दो ात्तियों को छोड़ आना ! तुम लोगों के पहुँचने पर सरकारी गाड़ियाँ उसे ले ायेंगी, और कुछ पूछना चाहते हो ?"

चाचा—"श्रीमान् का भाग्य ऊँचा हो ! उत्सव का समय जानना हमारे ए आवश्यक है, साथ ही हमें राज-दरबार के नियमों से परिचित कराया ाए ।"

हुए दुर्ग के फाटक तक पहुँचे । फाटक के अधिकारी ने प्रवेश-पत्रों का ध
; निरीक्षण करते हुए कहा—"देखो, इन्हें सँभाल कर रखना । इनके ि
दुर्ग में प्रवेश की आज्ञा न होगी और आज सांयकाल से पहले तुम्हें हर प्र
हाँ पहुँच जाना चाहिए ।"

यहाँ से हँसी-खुशी यह लोग सराय में पहुँचे और सब गायिकाओं को,
के पास बैठी गप्पें लगा रही थीं, यह सूचना दी ।

सब सुनकर खिल गई, किन्तु न जाने क्यों रूपा का हृदय धड़कने लगा
दोपहर हो गई थी । गुलनार ने अपने साज़िन्दों को आदेश दिया कि शं
र बाज़ार से खाना ले आयें और खाकर राज-दुर्ग की ओर चलें ।

गुलनार के आदमी जब बाज़ार को चलने लगे तो चाचा भी जाने के ि
। गुलनार ने हँसते हुए चाचा का पल्ला पकड़ लिया और बोली—"आ
जा सकते ।"

चाचा आश्चर्य से बोला—क्यों ?"

गुलनार "यूँ" कहते हुए चाचा के पाँव की ओर झुकी थी कि रूपा ने भ
र गुलनार को पकड़ लिया और हँसती हुई चाचा से बोली—"बैठ जा
! मत जाओ, यह बड़ी बहन के बिगड़ने के लच्छन हैं ।"

सब हँस पड़े और चाचा ने भी गुलनार के सिर को चूमा और हँसता हु
या ।

खाना आया । सबने मिलकर हँसी और ठहाकों की रेल-पेल में बड़ा आनं
कर खाया । खा-पीकर पाँच रथ-गाड़ियाँ भाड़े पर लेकर राज-दुर्ग क

राज दुर्ग के फाटक पर पहुँचकर सवारियाँ उतरीं और प्रवेश-पत्र
: पर नियुक्त सैनिक टुकड़ी के अधिकारी ने जाँच करने के लिए एक
प पूछा। सिपाहियों की दृष्टि गायिकाओं पर पड़ रही थी। देखने
ा रहा था सब देखने वालों के मन डोल रहे थे, आखिर छान-बीन के
हें उसी बाग़ में प्रतीक्षा के लिए ठहरने की आज्ञा मिली, जहाँ सवे
र उसके साथियों को खड़ा किया गया था।

रूपा आश्चर्यचकित खड़ी देख रही थी। सूर्य ढल जाने से फूलों प
गया था और खिले हुए फूल यूँ प्रतीत हो रहे थे मानो दीपक जल
कार-खाने में तीसरे पहर की शहनाई बज रही थी। रूपा ने यह
ले कहाँ देखी थी! बार-बार आँखें झपकाती थी कि कहीं स्व
हीं? यह भवन, यह बाग़ सचमुच के ही हैं न?

सब खड़े यही देख रहे थे कि जिस भवन में सवेरे दारोगा जी से
। भेंट हुई थी, वहीं से पाँच ख्वाजा-सरा तड़कीले-भड़कीले वस्त्र पह
ार सीधे उधर ही आये। सबने झुक कर अभिवादन किया। ख्
स्कराये और उनमें एक जो आगे था बोला—"आइये।"

पाँचों ख्वाजा-सरा आगे-आगे चल रहे थे और यह सब उनके
। पगडंडियों ने घूमते हुए एक सुन्दर, श्वेत, विशाल भवन में पहुँचे।
पत्थर के फूलदान सजे थे। खुले कमरे, कालीनों और रेशमी पर्दो
बिछे बड़े-बड़े पलंग के बहुमूल्य और नर्म गुदगुदे बिस्तरों से सुसज्जि

ध्यान रखे हुए थे। राज अतिथि-घर की सज-धज से सब की आँखों
ौंध हो गई। ख्वाजा-सरा सबको सम्बोधन करके बोला—"यह आप
के लिए है, आपके अतिरिक्त यहाँ कोई न आयगा। आपकी सेवा के लि
ारों (दूसरे ख्वाजा-सराओं की ओर संकेत करके) यहाँ उपस्थित रहेंगे।"
ह कहकर ख्वाजा-सरा ने गायिकाओं में से एक-एक को ध्यान पूर्वक देख
ब दृष्टि रूपमती पर आकर अटकी तो पूछा—"बहन ! आपका नाम ?"
पमती ने आँखें झुकाते हुए उत्तर दिया—"रूपमती।"
ाजा-सरा मुस्कुराया—"तुम्हीं अच्छी रहोगी"। कहते हुए पीठ फिर
ल दिया।
ब मुस्कुरा दीं। रूपा लजा गई।
सके जाने के बाद चारों ख्वाजा-सराओं ने कहा—"आप लोग अब खड़े न
ें, लेटें, आराम करें और हमें बतायें किस चीज की आवश्यकता है ?"
ाचा—"भाई ! हमारा सामान शहर में राज-सराय में पड़ा हुआ है।
ाकर सिवाय अपनी कली के, वैसे तो, अब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता
ी, परन्तु निवेदन है कि यदि वह भी मँगवा दी जाय तो हमारे साथी
ा मिलें।"
ली का नाम सुनकर सब मुस्कुरा दिये।
ाजा-सरा बोला—"इसकी चिन्ता न कीजिये। सरकारी गाड़ियाँ इसके
जी जा चुकी हैं। और आपके लिये (हँसकर) कली का भी अभी प्रबन्ध
ा जायेगा।"
के-सब मुस्कुराने लगे, किन्तु चाचा घबरा गया और बोला—"बड़ा
! किन्तु कली तो मैं अपनी ही पीऊँगा।"
ब अनायास हँस पड़े। ख्वाजा-सरा भी हँसने लगे।
भी बातें हो ही रही थीं कि पहला ख्वाजा-सरा फिर आ गया और बोला—

इन्हें दिलदोज़, इन्हें जिगरसोज़ और इन्हें शोला-अफ़रोज़ ।"

यह विचित्र नाम सुनकर सब मुस्कुराने लगे, किन्तु रूपा हँसी न सकी। अनायास हँसने लगी। उसे हँसता देखकर और सब भी हँसने लगे पाँचों ख्वाजा-सरा भी हँसते हुए चले गए।

इनके जाने के बाद भी बड़ी देर तक हँसी न रुकी। गुलनार हँस बोली—"ऐसे एक ही तुक वाले नाम आज तक न सुने थे।"

रूपा हँसते हुए बोली—"नामों से प्रतीत होता है कि यह नाम र विनोद के लिये रखे गये हैं। इनके वास्तविक नाम कुछ और होंगे।"

गुलनार—"ऐसा ही होगा। तुम्हारा अनुमान ठीक ही लगता है।"

शाम हो रही थी और सूर्य की किरणें धीरे-धीरे बढ़ते हुए अँधेरे में मिल रही थीं। रूपा, गुलनार और शेष सखियों को लेकर बाग़ में निकल और सब टहलती हुई हँसी-ठठोल की बातें करने लगीं।

गुलवार—"मन चाहता है, बस यहीं रहा करें।"

सब हँस पड़ीं। रूपा ठंडी साँस भरकर बोली—"बड़ी बहन! य समझो यहाँ रहकर संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगी। जिस सि राजमुकुट है, उस सिर में सबसे अधिक पीड़ा है।"

गुलनार—"रूपा! बड़ी दिलदोज़ और जिगर-सोज़ बातें करती हो कहीं 'फ़िरोज' सुन पाये तो क्या हो?".

सब ठहाका मारकर हँस पड़ीं। अभी यह बातें हो रही थीं कि सामने डंडियों पर राज-सेवक सिरों पर कुछ उठाये आते दिखाई दिये।

गुलनार—"लो सामान तो आ गया...और पीछे-पीछे हमारे आद आ रहे हैं।"

एक बोली—"भाई! क्या बात है? क्या लगा-बँधा प्रबंध है।"

रूपा—"बहन! यदि ऐसा न हो तो राज्य क्योंकर चले?"

सामान एक ओर लगा दिया गया। चाचा ने अपनी कली निकाल तम्बाकू चिलम में रखकर पुकारा—"अरे भैया जिगर सोज़।" जिग तुरन्त लपक कर आया।

चाचा—(चिलम उसकी ओर बढ़ाते हुए) "भैया ! जरा इसमें जलती· ती चार अंगारियाँ तो रखकर ले आओ।"

सबकी सब हँसने लगीं और चाचा और जिगर-सोज़ भी एक दूसरे की ओर कर मुस्कुरा दिये।

रात का अँधेरा कमरों में छाने लगा था कि शोला-अफ़रोज आया। झरोखों खी हुई मोमबत्तियों को जलाकर उन्हें शीशे के फ़ानूसों से ढँककर चला गया। थोड़े समय बाद फ़िरोज़ आया और भोजन के लिए कहा। सब भीतर गईं। दिलदोज़ और जिगरसोज़ हाथ धुलाने लगे और नीमरोज़ और ा-अफ़रोज़ खाने के थाल ले आये। भोजन लगा और सब खाने लगे किन्तु के थालों का ताँता था कि टूटता ही न था एक से एक बढ़िया पकवान। रूपा हँसकर फ़िरोज़ से बोली—"भैया ! हमें जीता भी रहने दोगे कि ?"

इस वाक्य पर सब हँस पड़े और ख़्वाजा-सरा भी मुस्कराने लगे।

खाना खाकर सबने अपनी-अपनी मसहरियाँ सँभालीं। पुरुषों ने एक ओर, स्त्रियों ने दूसरी ओर। रूपा और गुलनार दोनों पास-पास रहीं। ख़्वाजा-ों ने पान बना-बना कर हर मसहरी के साथ वाली चौकी पर रख दिये आज्ञा लेकर चले गये।

ार्तिक की चाँदनी और ठंडी रात में फूलों की सुगन्ध में बसे हवा के झोंके को सुगन्धित कर रहे थे। सब पर एक उन्माद सा छाया हुआ था। रूपा ुलनार थोड़ी देर तो मसहरी में लेटी बातें करती रहीं, परन्तु रूपा फिर ी से बाहर निकल आई और गुलनार से बोली—"चलो बहन ! बाहर चलें।" ोनों बाहर बाग़ में निकल आईं। चाँदनी खिली हुई थी। सामने दूधिया में राजमहल चमक रहा था जिसकी बुर्जियों में रंग-बिरंगी रोशनियों के एक समाँ उत्पन्न कर रहे थे। दोनों स्तब्ध मूर्त्ति बनीं, यह दृश्य देख रही

ा ! यह संसार भी विचित्र स्थान है और इससे विचित्र इसमें बसने
। किसी को पेट भर रोटी नहीं मिलती और किसी के पास संसार के
एकत्र हैं। किसी के पास फूटी कौड़ी नहीं और किसी के पास धन-दौलत
ो हैं। जाने भाग्य बनाने वाले ने यह अन्तर क्यों बना दिये हैं !"
ा—"सच कहती हो, इन भेदों को कौन जानता है ? किन्तु सत्य यही
ह रंगमय जीवन कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिस पर ईर्ष्या की जा सके।
नार—(आश्चर्य से) "यह क्या बात कही तुमने ?"
ा—"हाँ सच कहती हूँ। यह सुख तो केवल दर्शनीय हैं। वैसे इनका
नित नई दुर्घटनाओं से भरपूर होता है। क्षण-क्षण के पीछे भय।
साधारण आँखें तो इनकी राजसी विशालता पर चका-चौंध हो जाती हैं
र इनके पीछे का अंधकार नहीं देख पाते। बहन ! ऐश्वर्य तो वह होता
में शत्रु का धड़का न हो, सुख वही है जो पीड़ा रहित हो और जब
ां, तो परिवर्तनशील स्थिति में भाँति-भाँति की इच्छायें और कामनायें
ा सबसे बड़ी भूल है। सुख जभी प्राप्त होता है, जब उसकी कामना
जाय और दुख से उसी समय मुक्ति मिलती है, जब दुख को दुख न
जाय।"
नार आश्चर्य-चकित उसे तक रही थी। जब वह रुकी तो कहने लगी-—
! मैं तो तुम्हें केवल गायिका ही जानती थी। पर अब समझी तुम तो
हो।"
पा—(हँसकर) "अब भी नहीं समझीं बहन ! जोगन तो नहीं, मैं
ा हूँ।"
लनार—"किसका बिरोग है।"
पा—"जिसे आज तक देखा नहीं।"
लनार—"मैं नहीं समझी..."
पा कहने को तो यह बातें बहाव में कह निकली पर अब सँभ
थी कि इसके आगे बढ़े। कहने लगी—"किसी मन-घड़ंत पस्त

गुलनार—"हाँ कई बार···"

रूपा—"बस ऐसे ही, अपनी जीवन पुस्तक पर भी दृष्टि डाल लिया जिसमें मन-घड़ंत नहीं, बल्कि सच्ची कहानी लिखी है, तो बिरो जाओगी।"

गुलनार की आँखें छलक पड़ीं और वह उससे लिपट कर कहने "रूपा ! अब मैं समझी तुम स्वर्ग से उतरी हुई अप्सरा हो।"

रूपा हँस पड़ी, और आकाश पर दृष्टि डालकर चौंककर बोली- आधी रात हो गई।"

अभी यह बात हुई ही थी कि घड़ियाल ने बारह बजाये। दं पलट रहीं थीं कि फिरोज़ हाथ में चमकती हुई कटार लिये दि- दोनों सहम कर खड़ी हो गई।

वह ललकारा—"कौन हो तुम ?" रूपा ने सहम कर कह रूपमती।" फिरोज़ का उठा हुआ हाथ नीचे आ रहा, और बोला—

"हैं ! तुम, अब तक सोई नहीं ?"

रूपा—"हाँ भईया ! नींद नहीं आ रही थी। यहाँ आ खड़ी जो पलट रही थीं, तो तुमने, प्राण ही सुखा डाले।"

फ़िरोज़ हँस कर मुड़ गया और यहाँ दोनों भी दबे पाँव अपनी

ना तुम्हें बिना सोचे-समझे दरबार में नहीं ले आए···मैंने यद्यपि तुम्हें सुना ीं···बस अब दरबार में ही सुनूंगी···किन्तु सच जानो, मुझे विश्वास है कि म हम सब से बढ़कर हो···"

रूपा बीच ही में अनायास हँस पड़ी। गुलनार ने बात 'चालू रखी— हँसती क्या हो मैं बिल्कुल सच कह रही हूँ ?"

गुलनार अभी बात समाप्त भी न कर पाई थी कि चाचा नंगे पाँव बरामदे आकर कड़क कर बोला—"भूल गई तुम दोनों को रात की कटार। क्यों ाए देने पर तुली हो ?"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं। रूपा बोली—"चाचा ! अब तो दिन है, ोई भय की बात नहीं।"

चाचा (कड़क कर)—नहीं मानोगी ? भीतर आओ, नहीं तो मैं जाता "

दोनों हँसती हुई बरामदे में चढ़ आई और चाचा उनकी गर्दन में हाथ डाल र उन्हें भीतर ले आया। इस पर सब खिलखिला कर हँस पड़े।

गुलनार ने रूपा की शंकायें दूर करने का यत्न तो बड़ा किया किन्तु, वयं उसका सन्तोष न हुआ था। थोड़ी देर इधर-उधर की बातों के बाद उसने ाचा से मन की शंका दूर करने के लिए पूछा—

गुलनार—"चाचा ! कुछ बातें पूछती हूँ, यदि आप अनुमति दें तो।"

चाचा—"हाँ, हाँ ! पूछो !"

गुलनार—"मेरा अनुमान है कि आप संगीत में निपुण हैं ?"

चाचा—(हँसकर) "यह अनुमान तुमने कैसे लगाया ?"

गुलनार—"यह बताने की आवश्यकता नहीं। बस आप यह बात बता दीजिए कि क्या मेरा अनुमान ठीक नहीं ?"

रपूर न थी। यह संगीत की बहुत बड़ी कमी है। इससे मेरा यह
ीं कि मैं शहनाई बजाने वाले को बुरा कह रहा हूँ। वह इसका
;, किन्तु आखिर इन्सान है। अथाह सागर में कहाँ तक डुबकियां
ा, कहीं-न-कहीं साँस तो टूटेगी ही।"

ाचा की बात को सब ध्यान-पूर्वक सुन रहे थे। गुलनार बीच ही में हँस
ौर बोली—"बस चाचा ! मेरा अनुमान आपके सम्बन्ध में यदि बिल्कुल
हीं तो बिल्कुल झूठ भी नहीं।"

ब हँसने लगे और चाचा भी हँस पड़ा। पूछा—"परन्तु इस प्रश्न से
अभिप्राय क्या है ?"

लनार—अभिप्राय आप अभी जान जायेंगे एक दो बातें और पूछती हूँ।
ो यह बताइये कि आपने रूपा को गाने की शिक्षा इन्हीं नियमों के
दी है जो आपने अभी बताये हैं ?"

ाचा—"हाँ, प्रयत्न तो इसी का करता हूँ।"

लनार—"यह जानते हुए कि राजा स्वयं बड़ा कलावन्त है, क्या आपको
ा है कि रूपा का गाना दरबार में पसन्द किया जायेगा जबकि उसकी
ो अभी इतनी नहीं कि वह कला की निपुणता को पहुँचे ?"

ाचा—"हाँ ? मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सुनने वाले समझ रखते हैं
ा का गाना अवश्य पसन्द करेंगे। रहा प्रश्न आयु का, तो जान लो कि
कला की निपुणता आयु पर नहीं बल्कि बुद्धि की तीव्रता पर निर्भर है।
इन प्रश्नों से तुम्हारा तात्पर्य क्या है ?"

लनार—(मुस्कुरा कर) यही कि सन्तोष हो जाये, और वह हो गया।
ा कीजिये चाचा ? रूपा में कुछ ऐसी मोहनी है कि मन से मैं उसकी
ा की इच्छुक हूँ। दो ही दिन में मुझे उससे इतना अनुराग क्यों हो गया,
यं भी नहीं जानती।"

ाचा हँस पड़ा। बढ़ कर गुलनार को गले से लगा लिया। और सब लोग
ने लगे। रूपा समझ गई कि गुलनार ने यह बात केवल उसका साहस

सुनते ही सबको सम्मान के लिये खड़ा हो जाना होगा और उसकी
ारं पर ज्यों ही राज-सिंहासन के सामने का पर्दा हिले तो ससम्मान
ा होगा। जब राजा सिंहासन पर बैठ जायेंगे, तो सब अपने स्थान पर
। इसके बाद दरबारी कलाकार बधाई के गीत गायेंगे,। आज की सभा
प लोगों की होगी। दरबारी-गायिकायें यद्यपि वहाँ उपस्थित होंगी,
आज के नृत्य-संगीत में कोई भाग न लेंगी। दारोगा समय पर आप
ा कर देगा कि अब किसकी बारी है। अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीजिये।"
की आँखों के सामने दरबार का चित्र घूम रहा था और मन धक-धक
था। फ़िरोज़ चलने लगा तो प्रार्थना पूर्वक बोली—"ए भैया! यह
दो कि मेरी बारी कब आयेगी?"

ी चिन्ता पर सब गायिकायें हँस पड़ीं। फ़िरोज़ भी मुस्कुराने लगा
ा—तुम बहुत व्याकुल हो रही हो। इसमें घबराने की क्या बात है?
बात कि तुम्हारी बारी कब आयेगी, वह दारोगा से पूछ कर साँझ को
।" यह कह कर फ़िरोज़ चला गया।

समय के बाद अकस्मात राज-भवन के चारों ओर तोपों के गर्जने की
आई। नक्कारखाने की शहनाई बजना आरम्भ हो गई और सामने
याने के नीचे बाजे बजने लगे। सब लोग कमरों से निकल कर बाहर
ुये और राजभवन की ओर देखने लगे। यद्यपि कुछ दिखाई न दे रहा
भी सबने अनुमान लगा लिया था कि राजतिलक हो चुका है और
ुकुट धारण कर लिया है। तोपें गर्ज-गर्ज कर चुप हो गई,
जाने वालों ने धीमे स्वरों में अपना संगीत चालू रखा।

ान ठीक था। राजतिलक हो चुका था। अमीरों, वजीरों अ
धिकारियों ने उपहार प्रदान किये। कवियों ने यश-गान किये, धार्मि
द्यालयों और अनाथालयों और विधवा आश्रमों को रुपये बाँटे गये
की सलामी हुई। घुड़-दौड़, तीर-चलाना और तलवारों के करत
ये। गैंडा और सिंह को भिड़ाया गया। संक्षिप्त में यह कि कहीं दि

; पड़े फ़िरोज़ सामने से आता दिखाई दिया। पहुँचते ही उसने पूछा—
गों को कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"
। हँसकर एक साथ उसका धन्यवाद किया। फ़िरोज ने मुस्कुराते हुए
आँखें झुका लीं।
झट से बोली—"हाँ भैया ! बताओ मेरी बारी कब आयेगी ?"
की इस बात पर फिर सब हँसने लगे। फ़िरोज़ भी मुस्कुराने लगा
ा—"तुम्हारी बारी सबके अन्त में है।"
ोज़ ने वैसे ही उसकी ओर मुस्कराते हुए देखकर कहा—"इसलिये कि
से अच्छी हो।"
पर एक ठहाका पड़ा। रूपा लज्जा गई और झुँझलाकर बोली—
तुम बहुत बुरे हो।"
: एक ठहाका हुआ और फ़िरोज़ भी मारे हँसी के लोट हो गया।
ा के आदेशानुसार शाम को सबने बहुत थोड़ा खाया।
और राजभवन पर दीपमाला देखने के लिये सब बाग़ में आ खड़े हुए
। एक हवाई ने आकाश में फूल बरसा दिये और महल में आतिशबाज़ी
हो गई।

सब बाग़ में खड़े आतिशबाज़ी का दृश्य देख रहे थे कि सामने से फ़िरं
लपकता हुआ आता दिखाई दिया और आते ही शीघ्र कपड़े पहन कर तैय
हो जाने का आदेश दिया। सब कमरों की ओर बढ़ीं। रूपा के शरीर में स
सनी-सी फैल गई। बरामदे की सीढ़ियाँ चलते हुए टाँगें काँप गई। सबने कम
में आकर झट नये-वस्त्र पहिन लिये। गुलनार सज-सजा कर रूपा के कमरे
आई। देखा कि सलवार पास रखी है और स्वयं पीछे दोनों हाथों की टे
लगाये, पाँव फैलाये फ़र्श पर बैठी दीवार को तक रही है। साश्चर्य घबराक
बोली—"हैं! अभी तक सलवार ही नहीं पहनी ?"

रूपा ने उसकी ओर देखा, अनमने मन से धीमे स्वर में कहा—"अभ
हिनती हूँ।"

गुलनार पास बैठ गई। सिर पर हाथ फेरने लगी और उसका माथा चूम
र बोली—"रूपा! तुम्हें क्या हो गया है? बच्चा बनी जा रही हो। क्
भाऊँ तुम्हें? जी चाहता है सिर फोड़ लूँ...स्वयँ को सँभालो!"

रूपा झट झुरझुरी-सी लेकर उठ बैठी। शीघ्र कपड़े उठा लिये और डब
डबाई आँखों से गुलनार की ओर देखकर बोली—"क्रोध न कर बहन! मैं
सँभल गई।"

गुलनार—"लाओ, पहले कंघी कर दूं।"

रूपा के हाथ से कंघी लेकर शीघ्र उसके बाल सँवारे, चोटी गूंथी और
स्वयं उसे कपड़े पहनाने लगी। सलवार पहनने और दुपट्टा ओढ़ाने के बाद जो

कि कोई अप्सरा है जो पलक झपकने में आकाश से उतर आई है। व
ट गई। स्वयं रूपा की दृष्टि जो बड़े दर्पण में अपने पर पड़ी तो स्तब्
। मुस्कान की एक लहर होटों पर दौड़ गई।

गुलनार जब उसे कमरे से लेकर बाहर निकली तो सबकी दृष्टि उस
कर रह गई। इस बीच में फ़िरोज़ भी आ गया। साज़िन्दों ने साज़ सं
: सब फ़िरोज़ के साथ राज भवन की ओर चल पड़े।

पगडंडियों से होकर सामने वाली फूलों की लता के बने प्रवेश-द्वार से
महल के बाग़ में आईं तो एक जादू का-सा समाँ दिखाई दिया।
की फटी रह गईं। पगडंडियों पर फानूसों में मोमबत्तियाँ जल रही
मरमर की जाली से होते हुए झरने बह रहे थे, फव्वारे चल रहे थे
े-चौड़े हौज़ में झिलमलाता हुआ रंग-बिरंगा प्रकाश अति सुन्दर
ा था।

सामने राजभवन का कोना-कोना दीपमाला से जगमगा रहा था
ों को देखकर, सब आश्चर्य में डूबे, इधर-उधर घूमते, राज-भवन की
चले जा रहे थे।

रूपा का सारा शरीर सनसना रहा था। हृदय की यह दशा थी मानो
कनी लग गई हो। पग-पग पर लड़खड़ाती, गुलनार के कंधे पर हाथ
ारा लिये चली जा रही थी। गुलनार चलती-चलती उसे ढारस बँधाती
ी थी—"क्यों डूबी जा रही हो? कहीं सिंह के पिंजरे में डालने तो न
रहे। सुध रखो। हम सबका मान तुम्हारे हाथ है।" किन्तु रूपा चुप
जैसे कुछ सुन ही नहीं रही। इसी प्रकार चलते-चलते वह भवन तक
। फ़िरोज उन्हें पिछले द्वार की ओर ले गया जो कलाकारों के प्रवे
ए निश्चित था।

झपकने से पता चलता था कि वह मूर्तियाँ नहीं बल्कि जीवित मनुष्य हैं।

फ़िरोज़ के साथ सबके सब राजसिंहासन के सामने झुक गये। चबूतरे पर ईरानी कालीनों का फ़र्श था जिसके दायें-बायें लगभग एक सौ दरबारी गायिकायें सजी-धजी बैठी थी। दरबारी साजिन्दे भी बैठे थे।

रूपा और गुलनार को फ़िरोज़ ने चबूतरे के मध्य में राजसिंहासन के सामने बैठने का संकेत किया। गुलनार ने रूपा को बीच में रखा, तीन-तीन उसके इधर-उधर हो गई और स्वयं उसकी जाँघ मिलाकर बैठी। चाचा और साजिन्दे भी उनके साथ मिलकर बैठ गये।

चबूतरे से दो सीढ़ी उतर कर भवन का खुला चौड़ा फ़र्श सिंहासन के ईरानी कालीनों से सजा था। इसके दोनों ओर अमीरों वज़ीरों की सुनहरी कुर्सियाँ थीं। भवन की सजावट का क्या कहना था, जिधर भी दृष्टि जाती जम कर रह जाती। हरे कालीन, हरे पर्दे, छतों और दीवारों में लगे हरे झाड़ फ़ानूस···हरे रंग के प्रकाश की झिलमिलाहट ने एक समाँ बाँध रखा था, काफ़ूर और सुगंधित धूप की वातावरण में भीनी-भीनी महक बस रही थी।

दरबारी गायिकायें और कलाकार आने वालों में से एक-एक को बड़े ध्यान से देख रहे थे और फिर-फिरा कर सबकी दृष्टि का केन्द्र रूपा ही बनती थी कि आयु में सबसे अल्प और सौन्दर्य और सज-धज में सबसे उत्तम थी। गुलनार बार-बार चुटकियाँ लेकर उसे संकेत से कह रही थी कि जाने पूरे दरबार में केवल तुम्ही हो और रूपा दबे होंठों मुस्कराहट से उसकी ओर देख कर रह जाती थी। रूपा का मुख शान्त था।

एकाएक चारणों की 'होशियार,' 'बाअदब' की आवाजें कड़कीं और राज्य के मुख्य अधिकारियों और माननीय अतिथियों की एक भीड़ भीतर आई। सब राजसिंहासन के सामने झुके और उपाधि-अनुसार अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। भवन में हजारों ही व्यक्ति थे किन्तु मौन से यूँ प्रतीत होता था मानो वहाँ कोई न था। सब की दृष्टि राजा के आगमन की प्रतीक्षा में सिंहासन पर

होती है। हजार सोचती थी, किन्तु कुछ समझ में न आता था। बात-चं
कोई अवसर न था कि कुछ पूछ या कह सकती। रूपा, एक टक राजसिं
की ओर देखे जा रही थी।

बधाई का गीत समाप्त हुआ। गुलनार उठी और चबूतरे की सी
उतर कर भवन के मध्य में पहुँचकर ठहर गई। झुककर अभिवादन कि
साज़िन्दों ने धुन छेड़ी और वह नाचने लगी। नाच कूदने के बाद
आरम्भ किया। देर तक गाती रही। राजा तकिये से टेक लगाये बिना
डुले सुन रहा था। उसका ध्यान-मग्न होना जता रहा था कि वह प्रस
रहा है। दरबार वालों की भी किसी-किसी गत पर डोलती हुई गर्दनें यह
रही थीं कि संगीत अपना प्रभाव डाल रहा है।

रूपा इस बीच सँभल चुकी थी। उसे विश्वास हो गया था कि स
राजसिंहासन पर बैठा हुआ व्यक्ति ही उसके स्वप्नों का पात्र है, उसकी क
की मूर्ति है जिसे वह कितने समय से मन में बसाये है। यह सत्य है,
कोई भ्रम नहीं, किन्तु आश्चर्य में थी कि उस तक किस प्रकार पहुँचेगी।
कण और कहाँ सूर्य। फिर मन ही मन कहने लगी, 'रूपा! क्यों पगली
है···इस कामना को छोड़···क्या यही थोड़ा है कि देख तो लिया। हाय!
समय न हुई चम्पा, मुझे झुठलाने वाली चम्पा, उलाहने देने वाली चम्पा,
दखाती कि देख, यह है मेरा स्वप्न, मेरे स्वप्न की पूर्ति, स्वप्न की पूर्ति?
क्या कह गई मैं···अभी कहाँ? किन्तु यह है तो वही, मुझे सताने वाला,
सुख-चैन नष्ट करने वाला—अपने चाचा के उपकार कहाँ चुका सकूंगी, जि
आज उस मन्दिर में पहुँचा दिया, जहाँ सामने अपने देवता को बैठा देख र
हूँ। आज इसके सामने नाचूँगी, जी भर के नाचूँगी। नाचना इसी के लि
सीखा था, आज अपना दुखड़ा इसे सुनाऊँगी कि यह इसी की देन है···'

इन्हीं विचारों में डूबी थी कि गुलनार गाना समाप्त करके अभिवादन
झुकी और उलटे पाँव हटती हुई चबूतरे पर पहुँच गई। उसकी दृष्टि जब रू
पर पड़ी तो देखा कि रूपा उसकी ओर मुस्करा रही है, मुख पर तेज, आँ

दूसरी गाने वाली उठी और सभा में पहुँच गई। रूपा पर यह समय बड़ा ठिन बीत रहा था। बार-बार कसमसा रही थी, करवट पर करवट बदल रही ो कि कब उसकी बारी आयेगी।

जब अन्तिम गाने वाली उठी तो उसने सन्तोष की साँस ली। मुख पर ालिमा दौड़ गई। आँखों में चमक आ गई। मुस्करा कर गुलनार की ओर खा। सलवार में लिपटे हुए दोनों पाँव बाहर निकाले और घुँघरुओं के लिये सकी ओर हाथ बढ़ाया। गुलनार यह देखकर प्रसन्नता से फूली न समाई और वयं आगे बढ़कर उसके पाँव में घुँघरू बाँधने लगी। रूपा ने जो उसका हाथ कड़ा तो उसने झटक कर परे कर दिया। रूपा मुस्कराने लगी। मुस्कराती ाती थी, और घुँघरू बँधवाती जाती। दृष्टि कभी सिंहासन पर थी, कभी गाने ाली पर। अन्त में गाना समाप्त हुआ और गायिका अभिवादन को झुकी। ूपा बिजली की भाँति तड़प कर उठी और गायिका के वापस पहुँचने की तीक्षा करने लगी। उसने उल्टे पाँव रखते हुये, चबूतरे की पहिली सीढ़ी पर ाँव रखा था, कि वह लचकती हुई, सीढ़ियों से उतर कर, भवन के बीचों-बीच िंहासन के सामने जा खड़ी हुई। गुलनार उसके इस परिवर्तन को आश्चर्य से ेख रही थी। सारा दरबार उसके कुन्दन से दमकते-दमकते यौवन, सौन्दर्य और ाज-धज को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। धीरे-धीरे अभिवादन को झुकी, ौर फिर वैसे ही धीरे-धीरे उठती हुई, सीधी तीर बन कर खड़ी हो गई। ाजिन्दों ने धुन छेड़ी। धुन बज रही थी और यह मूर्तिवत् बिना हिले-डुले खड़ी ी। धुन बजती रही, बजती रही। पर वह सब लोगों की दृष्टि का केन्द्र बनी, ड़ी रही। साजिन्दे इस भाव को समझ गये। धुन को ऐसा रचाया कि गुंजन

वन में राग का मेंह बरस रहा था, और दूसरी ओर फर्श पर एक बिज
तड़प-तड़प कर कौंध रही थी, एक तितली थी, कि व्याकुल, थिरक
ी थी, कभी निकट तो कभी दूर। कभी सिंहासन के नीचे और क
ों के समीप। दरबारी विस्मित उसे देख रहे थे। यूं प्रतीत होता
-नस में बिजलियाँ भरी हों। जी भर के नाची और खूब नाची। धी
ा धीमी होती गई और नृत्य घटता गया। पीछे हटते-हटते चबूतरे
क पहुँच गई, और नृत्य समाप्त कर दिया। धुन बन्द हुई और
दन को झुक गई।
बार में पूर्ण निस्तब्धता थी। किसी की पलक न झपक रही थी औ
ीव्र चल रही थीं। उसने मुड़ कर, धीरे से गुनगुना कर साज़िन्दों
ई, साज़ फिर छिड़ गये और नर्त्तकी अब गायिका बन कर फिर रा
मध्य में आ खड़ी हुई। धुन रच चुकी थी जब गाना आरम्भ हुआ
र का माधुर्य, राग का प्रभाव और गीत का अर्थ, गायिका का हाव-भा
पर जादू-सा बन कर छा गया। प्रत्येक पद्य के भाव की यूं व्याख्या
-भाव में चित्र-सा उतर गया। झूम-झूम कर गा रही थी और दरबार
हुये से साथ झूम रहे थे। राजा बार-बार करवट बदल-बदल के
। ऐसा प्रतीत होता था कि व्याकुलता छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो
ा पूरा करके वह अभिवादन को झुक गई। राजा सिंहासन से उठ खड़
ायिका पर दृष्टि डाली और हाथ से सिंहासन की सीढ़ियों की ओर आ
त किया। सिर पर आँचल ओढ़ कर वह बढ़ी और चार सीढ़ियाँ च
झुक गई। अभी पूरी उठी भी न थी कि राजा के हाथों से मोतियो
ा उसके गले में आ गिरी। सिंहासन के सामने पर्दा गिर गया। राजा
था।
ट कर छम-छम करती हुई रूपा सीढ़ियों से उतरी और दरबारियों की
में से, जो अभी तक खड़े थे, दृष्टि झुकाये गुज़रती चली गई। मुख
धान पर गम्भीरता टपक रही थी। दरबारी विस्मित से कानाफूसी कर
चबूतरे के पास गुलनार को देखते ही मुस्कुराई। वह झट सीढ़ियों से

उतर कर आ चिमटी। माथे को चूमा और सहारा देकर चबूतरे पर ले आई। साथ वालों की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। ऊपर आकर फर्श पर बैठ गई। घुंघरू खोलने लगी। गुलनार से बोली—"फ़िरोज़ आ जाये तो शीघ्र चलो। मैं बहुत थक गई हूँ।" दरबारी गायिकायें उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देख रही थीं कि फिरोज़ मुस्कुराता आ पहुँचा और वह गृह को चल पड़ी।

१८

रूपमती के सौंदर्य और गायन-कला की निपुणता का चर्चा हर छोटे-बड़े में था। यह सम्मान आज से पहले किसी को प्राप्त न हुआ था। आतिथ्यि-गृह में पहुँच कर सबसे पहले फ़िरोज़ ने उसे बधाई दी। रूपा ने संकोच से दृष्टि झुका कर उसका धन्यवाद किया, और बोली—"फ़िरोज़ भईया! हम लोग केवल आज रात तुम्हारे अतिथि और हैं। किन्तु मैं सच कहती हूँ, कि हम तुम्हारे अतिथि-सत्कार और सेवा को जीवन-भर कभी न भूलेंगे इस दरबार में मेरे भाग्य ने ही मुझे पहुँचा दिया वरना गाना-बजाना मेरा व्यवसाय नहीं है। राज-दरबार में जाते मुझे भय लगता था, किन्तु तुम्हारी कृपा ने मेरा साहस बढ़ाया।"

फ़िरोज इसके सुलझे हुए बात करने के ढंग से बड़ा प्रभावित हुआ। यह जान कर कि रूपा कोई नित्य की गाने-बजाने वाली नहीं, बहुत आश्चर्य हुआ। मुस्कुरा कर कहने लगा—

तो केवल सेवक हैं, जो आज्ञा पाते हैं उसका पालन करते हैं। रही यह
तुम स्वयं को केवल आज की रात का अतिथि समझ रही हो मेरे
के अनुसार यह ठीक नहीं। प्रातः होने दो और देखो कि राजा से क्या
ःहारे लिए पहुँचती है। मैंने इसी विचार से तुम्हें बधाई दी है।" यह
वह मुस्कुराता हुआ चला गया।
ा का अन्तिम वाक्य रूपा के मन में पत्थर की लकीर बनकर रह गया।
हो कर रह गयी। चाचा और गुलनार के चेहरे पर प्रसन्नता खिल

अधिक बीत गई थी। सब लोग थकान अनुभव कर रहे थे। जम्हा-
ही थीं। सब अपनी-अपनी मसहरियों में जा लेटे और कुछ ही देर में
ने लगे।
की आँखों में नींद न थी। गुलनार की ओर करवट ले कर बोली—
ो गई क्या?" गुलनार चुपके पड़ी जाग रही थी। बोली—"नहीं

ने फिर धीमे स्वर में कहा—"चलो बाहर चलें।" गुलनार बिना
ही उठ खड़ी हुई और धीरे से पर्दा उठा कर बाहर निकली। दोनों
ाग़ में पहुँच कर फ़व्वारे पर जा बैठीं। दोनों साथ-साथ चुपचाप ऐसे
से दो मूर्तियाँ हों। सामने राजमहल, रंग-बिरंगी रोशनी में जगमगा
कभी-कभी प्रहरी का स्वर रात्रि के मौन को तोड़ता था।
ो बैठे-बैठे बहुत देर हो गई। गुलनार ने अन्त में इस मौन को तोड़ा
—"रूपा! तुम मुझे किस कारण से उठाकर लाई थीं।"
लाई तो थी" रूपा ने बड़ी देर में उत्तर दिया। गुलनार आगे
ने लगी कि वह क्या कहती है। पर रूपा चुप रही।
र ने फिर कहा—"तो कहो! क्या कहना चाहती हो?"
बताऊँ? क्या कहना चाहती हूँ?" इतना कह कर रूपा फिर चुप

प्रयत्न किया है, किन्तु ; मैं तुम्हारी गहराईयों में न उतर सकी। मैंने तुम्हें चिन्तित भी देखा है, खोया हुआ भी पाया है, भयभीत भी अनुभव किया है, दरबार में जो भावों का उतार-चढ़ाव तुम पर बीता, वह भी देखा, फिर नाचते गाते समय तुम्हारी मस्ती को भी देखा और अब यह दशा भी देख रही हूँ। सच कहो यह सब क्या है ?"

रूपा कुछ देर तो चुप रही, फिर बोली—'-यदि मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ी तो क्या तुम मेरा साथ दोगी ?"

गुलनार—"मन से, किन्तु तुम मुझे कुछ बताओ तो सही।"

रूपा—यदि फ़िरोज़ के अनुमानानुसार मुझे राजमहल में रुकने की आज्ञा मिली, तो मैं चाहती हूँ कि तुम भी मेरे साथ आलो।

गुलनार—मैं पहले कह चुकी हूँ कि मन से तुम्हारा साथ दूँगी ; पर तुमने मेरे प्रश्नों में से किसी का उत्तर नहीं दिया ?"

रूपा—गुलनार की ओर देखकर मुस्कुराने लगी और बोली—"तुम्हारे ढेर सारे प्रश्नों के उत्तर इतने थोड़े समय में दिये जाने सम्भव नहीं दूँगी, सब कुछ बता दूँगी, किन्तु अब नहीं। चलो सोयें !" यह कह कर रूपा उठ खड़ी हुई।

किन्तु गुलनार वैसे ही बैठी उसका मुंह तकती रही। रूपा ने हाथ पकड़ कर जो उसे उठाना चाहा तो गुलनार ने हाथ झटक कर छुड़ा लिया। झुंझला कर बोली—"यूं न उठूंगी, जब तक तुम मेरी चिन्ता दूर न करोगी, और अपने मन का रहस्य न बताओगी।"

रूपा हँस पड़ी और लिपट गई। बोली—क्रोध न करो, प्यारी बहन ! मैं सब कुछ बता दूँगी, सब कुछ सुना दूँगी। तुम्हीं से परामर्श लूँगी, यहाँ तुम ही मेरे काम आओगी। अच्छा···लो, अब, तो उठो।

उधर राजा के शयन-गृह में काफूर के दीपक प्रकाशमान थे और राजा स्वर्णखाट पर लेटा, तकिये से पीठ लगाये एक दासी से बात कर रहा था— "तुम कहाँ थीं ?"

दासी—"राजमाता ने उसे बहुत पसंद किया।"

राजा—"क्या कहती थीं ?"

दासी—"यही, कि हमने इस सौंदर्य और सज-धज की कोई स्त्री नहीं देखी
नृत्य नहीं देखा, ऐसा संगीत नहीं सुना।"

राजा ने दबी हुई एक ठंडी साँस भरी और मुस्कुरा कर दासी की ओर
—"तुम्हारे कानों को धोखा तो नहीं हुआ, अमानी !"

अमानी (दासी) आँखें झुकाकर—"नहीं श्रीमान्। कदापि नहीं।"

राजा (मुस्कुरा कर)—"तुम्हारा क्या विचार है ?"

अमानी—"किस के विषय में श्रीमान् !"

राजा—"जो बात राजमाता ने कही है ?"

अमानी—"उन्होंने सत्य ही कहा है, श्रीमान् !'

राजा—"तो तुम्हारा क्या विचार है, उसे राजमहल में बुला लिया जाये ?"

अमानी—"क्या हानि है ? श्रीमान् ! बल्कि, दासी के तो यह विचार हैं कि
ारी गायिकाओं में उसके जोड़ की एक भी नहीं। एक बात जो विशेषता:
ं है, वह यह कि उसका रंग-ढंग व्यवसायी गायिकाओं से बिल्कुल भिन्न है।"

राजा—"यह अनुमान तुमने कैसे लगाया ?"

अमानी—"राजसिंहासन की सीढ़ियों से जब वह पलटी है, तो दासी उसे
ापूर्वक देख रही थी। बड़ी गम्भीरता के साथ, दृष्टि पर आँचल डाले, वह
्थित दरबारियों की पंक्तियों में गुज़रती चली गई। उसके मुख पर तनिक
ार्व की झलक न थी, और न होठों पर मुस्कान। वरना श्रीमान ! इतने
ान के बाद उसे आपे से बाहर हो जाना चाहिए था।"

राजा कुछ रुक कर बोला—"यदि तुमने इसे ठीक जाँचा है तो तुम्हारी
प्रशंसनीय है। अतिथि घर में कौन सेवक नियुक्त है ?"

अमानी—फ़िरोज़, ख्वाजा-सरा।"

राजा—"अच्छा...सवेरे ही उसे कह दो, कि राजाज्ञा पहुँचा दे।"

दोनों, चुपके से हँसने लगीं। गुलनार ने कहा—अच्छा···उठो···! और
हा लो !"

"और तुम !" रूपा ने कहा।

गुलनार—"बस, मैं भी तैयार होती हूँ।"

रूपा मसहरी छोड़ स्नान-गृह में चली गई।

अमानी ने सवेरे ही फ़िरोज को राजाज्ञा से सूचित किया, तो वह मुस्
ा और बोला ! "मैंने तो बहना ! रात ही रूपा को बधाई दे दी थी।"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "क्या परख है तुम्हारी, फ़िरोज़ ! अच्छा, उ
म रूपमती है ? क्या प्यारा नाम है !"

फ़िरोज़—(हँसकर) "बहना ! हर ढँग से, प्यारी है। सौन्दर्य से, कर
वहार से, बातचीत से, क्या बताऊँ उसमें कितनी मोहनी है। राजा का चु
ा उचित है। और हाँ, वह कोई व्यवसायी गायिका नहीं है।"

अमानी ने आश्चर्य से पूछा—"अच्छा !"

फ़िरोज़—"हाँ"

अमानी—"अच्छा तो अब उसे ले आओ ! मैं अपने घर में तुम्हारी प्रत
ूँगी।"

फ़िरोज़—"रात को वह लोग बड़ी देर से सोये हैं सो अभी तक नहीं जा
बार जाकर लौट आया हूँ। अभी फिर जाता हूँ। आशा है वे उठ चुके होंगे

अमानी—"शीघ्रता करना ! सम्भव है कि राजमहल से मेरा बुलावा
ये।"

फ़िरोज सीधा अतिथि गृह में आया। देखा कि सब नहा-धो चुके हैं। र
त-वस्त्र पहिने, चौकी पर बैठी है। शरीर पर कोई गहना नहीं किन्तु सा
हज़ारों शृङ्गार न्योछावर। फ़िरोज़ को बड़ी प्यारी लगी। दृष्टि जम
गई। बाहर ही से पलट आया और नाश्ता उठवा कर लाया।

जब नाश्ता हो चुका तो फ़िरोज़ ने पहले तो रूपा की ओर मुस्कुरा
ा और फिर चाचा से बोला—"चाचा ! आप को बधाई हो कि अभी-अ
ज-महल की मुख्य दासी अमानी ने, अन्तःपुर में रूपमती के बुलावे की आ

झे सूचित किया है। अमानी उसकी प्रतीक्षा कर रही है।"

चाचा की बाँछें खिल गईं। साथ वाली गायिकाओं ने रूपा को ईर्ष्या की से देखा और सबने चाचा को बधाई दी। रूपा खड़ी हो गई और राजाज्ञा म्मान में झुक गई। चाचा ने हँसते हुये रूपा को सम्बोधित किया—"हाँ, ! फ़िरोज़-भईया खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

गुलनार ने आकर रूपा का माथा चूमा और बोली—"तुम्हें बहुत, बहुत ाई हो, मेरी रूपा !"

फिरोज़ की दृष्टि रूपा पर जमी हुई थी। वह चुपचाप गम्भीर खड़ी थी। दृष्टि गुलनार पर डाली और आँचल सिर पर डाल कर, फ़िरोज़ के पीछे-छे राजमहल की ओर चल पड़ी।

फूलों की लता के प्रवेशद्वार से होकर राजमहल के बाग़ में आये, तो अमानी अपने घर के सामने वाले उद्यान में खड़ा पाया। पलट कर रूपा से कहने ा—"वह खड़ी है अमानी।"

रूपा ने आँख उठा कर देखा तो अनुभव किया कि उसकी दृष्टि उधर ही ी है, बोली—"जान पड़ता है, हमारी ही प्रतीक्षा में खड़ी हैं।"

फ़िरोज़—"अवश्य"

उद्यान की पगडंडियों से घूमते-फिरते चले जा रहे थे। यूँ तो रूपा रात को ी इस मार्ग से गुजरी थी, किन्तु इस समय उसका दृश्य और भी सुन्दर लग हा था। अमानी की दृष्टि रूपा पर ही जमी थी। अभी उनके बीच में कुछ ासला था ही कि रूपा ने आँखें झुका लीं।

तीस-पैंतीस वर्ष की आयु, तीखे नयन नक़श यह थीं—अमानी बी। समीप हुँच कर रूपा ने आँख उठा कर देखा और अभिवादन किया। फ़िरोज़ ने ुस्कुरा कर परिचय करवाया—"आप हैं अमानी जी ! राजमहल की दासियों ी मुखिया और आप हैं, रूपमती।"

ने रूपा को एक मखमली गद्दे वाली चौकी पर बैठने का संकेत किया। र
लज्जा से गर्दन झुका कर बैठ गई। अमानी बड़ी रुचि से उसे देख रही
सादा श्वेत वस्त्रों में, बिना किसी शृंगार के, वह एक राजकुमारी प्रतीत
रही थी।

अमानी—"बीबी ! आप निःसंकोच होकर आराम से बैठें।"

रूपा—(दृष्टि झुकाये मुस्कुरा कर) "जी, बड़े आराम से बैठी हूँ।"

अमानी के संकेत पर एक दासी ने आगे बढ़कर पानदान रूपा के सा
किया। रूपा ने एक गिलौरी उठाई और मुँह में डाल ली।

दासियाँ चली गई और दोनों अकेली रह गई।

अमानी—(मुस्कुरा कर) "मैं आपको बधाई देती हूँ कि महाराज ने आप
उपस्थिति का उच्च-मान प्रदान किया है। आशा करती हूँ आपका मान वि
प्रतिदिन बढ़ता रहेगा।"

रूपा—(उठकर अभिवादन करते हुए, विनम्रता से) "मैं तुच्छ दासी इ
बड़े सम्मान के लिए आपका धन्यवाद करने को शब्द कहाँ से लाऊँ ? महार
मेरे लिए भगवान के रूप से कम नहीं, सो उनकी कृपा-दृष्टि के नीचे निरा
का स्थान ही नहीं।"

अमानी मन ही मन उसके बात करने के ढंग की प्रशंसा करने लगी।

अमानी—"सुनती हूँ बीबी ! आप कोई व्यवसायी गायिका नहीं।"

रूपा—(नीची दृष्टि किये, गम्भीरता से) "जी !"

अमानी—"तो फिर राजदरबार में आने का विचार कैसे हुआ।"

रूपा—(अमानी की ओर मुस्करा कर देखते हुए) "केवल विचार ही कि
निश्चय का प्रेरक नहीं होता, बल्कि प्रायः मानव, कई काम बिना विचार अ
निश्चय के भी करने पर विवश हो जाता है।"

अमानी उसकी इस प्रत्युत्पन्नमत्ता पर बड़ी विस्मित हुई। मन में कह
लगी कि लड़की है तो कल की बच्ची, किन्तु कितनी प्रौढ़ बुद्धि लिए हुये
अनायास हँस पड़ी, बोली—"आप सच कहती हैं बीबी ! ऐसा भी होता है

रूपा चुप रही।

अमानी ने फिर पूछा—"आपको राज-अतिथि-गृह में कोई कष्ट तो नहीं आ ?"

रूपा—(मुस्कुरा कर देखते हुए) "यदि स्वर्ग में आकर भी कोई कष्ट अनु-व करे तो उसका ठिकाना सिवाय नर्क के, कहीं भी न होना चाहिये। हम रीब देहाती लोग तो इस ऐश्वर्य की कल्पना भी नहीं कर सकते।"

अमानी—"आप अपने आप को देहातन क्यों कहती हो ?"

रूपा—"जी, मेरे साथ वालियाँ तो सब शहरों की रहने वाली हैं किन्तु मैं ास्तव में देहातन हूँ।"

अमानी—"आश्चर्य है! कहाँ की रहने वाली हैं आप ?"

रूपा—"राजा ही की प्रजा हूँ। यहाँ से डेढ़ मंजिल पर एक छोटा-सा गाँव है, चाँदनगर।"

अमानी—"वहाँ आप क्या करती हैं ?"

रूपा—"मैं तो कुछ नहीं करती। मेरे चाचा जिन्होंने मुझे पाला-पोसा है उनकी थोड़ी सी जमीन है। मेरे माता-पिता भी किसान थे, कुछ जमीन वह छोड़ गये। बस इसी से गुज़र होता है।"

अमानी—"आपके माता-पिता कब स्वर्गवास हुए ?"

रूपा—"जी, मैं तो बच्चा थी···उनकी सूरतें भी मुझे कुछ भली प्रकार याद नहीं हैं। मेरे चाचा-चाची, जिन्हें मैं अब चाचा-चाची कहती हूँ, वास्तव में मेरा इनसे कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं। इन्होंने मुझे अनाथ जानकर गोद ले लिया और अपनी सन्तान की भाँति मेरा लालन-पालन किया था। चाचा के अपनी कोई सन्तान न थी। चाचा को संगीत से बड़ा प्यार था और उन्होंने मुझे भी उसकी शिक्षा दी। अब मैं, इन्हें ही अपना माता-पिता मानती हूँ। इन्हीं की इच्छा पर मैं यहाँ आई और दरबार तक मेरी पहुंच हुई। मैं जो कुछ भी हूँ इन्हीं के उपकारों से हूँ।"

अमानी—"यह जो आपके साथ वालियाँ हैं, इनसे आपकी भेंट कहाँ हुई ?"

रूपा—"यहीं, राज-अतिथि-घर में।"

रती हूँ कि आपको यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।"

रूपा ने ज़बान से तो कुछ न कहा केवल धन्यवाद में गर्दन हिला दी।

अमानी—"यहाँ आपके साथ कौन है ?"

रूपा—"जी, मेरे चाचा हैं।"

अमानी—"आप अपने चाचा के साथ अभी राजमहल में आ जायें। अब से ाप यहाँ की अतिथि नहीं बल्कि यहीं का एक अंग हैं। आप के लिए राज़भवन बिल्कुल साथ एक मकान निश्चित किया गया है ?"

रूपा ने धन्यवाद में फिर गर्दन झुका दी और बोली—"कुछ विनती करना ाहती हूँ। मेरी चाची गाँव में हैं। मैं उन्हें भी यहाँ अपने संग रखने की र्थना करती हूँ।"

अमानी—"हाँ अवश्य रखिये। उन्हें लिवा लाने का प्रबन्ध कर दिया येगा।"

रूपा—"दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि मेरी साथ वालियों में एक गायिका ुलनार, दो ही दिन में मुझे उससे ऐसा अनुराग हो गया है कि बिछड़ने को , नहीं चाहता, उसे भी अनुमति प्रदान की जाये।"

अमानी—"वही तो नहीं, जिसने सबसे पहले गाया था ?"

रूपा मुस्कुराने लगी—"जी वही। आप हमारे गाने के समय कहाँ थीं ?"

अमानी हँसने लगी—"मैं झरोखे से देख रही थी जहाँ राजमाता विराज-न थी।"

रूपा—(मुस्कुराकर) "बड़ी भाग्यशाली हूँ कि राजमाता ने भी मेरा ना सुना।"

अमानी—(मुस्कुराते हुए) "बल्कि बहुत पसंद किया।"

रूपा ने फिर धन्यवाद में गर्दन झुकाई और बोली—"तो क्या फिर मेरी ; प्रार्थना स्वीकार होगी ?"

अमानी—"निसन्देह स्वीकार है। गुलनार गाने वाली भी बुरी नहीं और ो भी सुन्दर है (स्वयं मुस्कुराने लगी) और सबसे बढ़कर यह कि आप उसे

रूपा के मुख पर प्रसन्नता से लालिमा दौड़ गई। बोली—"मैं धन्यवा करती हूँ। अब मुझे आज्ञा दीजिए कि चाचा और गुलनार को जाकर यह सूचन सुना दूं।"

अमानी—"अब आपके जाने की क्या आवश्यकता है ? फ़िरोज़ जाक स्वयं उन्हें यहाँ ले आयेगा।"

रूपा—"राज-आज्ञा से मुंह मोड़ने की मेरी मजाल नहीं। मैं वहाँ केव एक बार इस आशय से जाना चाहती हूँ कि उन सब से मिल लूंगी जिनके सा तीन दिन इकट्ठी रही, और उनका और उनके साजिन्दों का धन्यवाद करना भ अपना कर्त्तव्य समझती हूँ कि उन्होंने मेरे गाने में संगत की।"

अमानी को उसकी यह बात बड़ी अच्छी लगी। हँसकर बोली—"मैं आप इस विचार की प्रशंसा करती हूँ, अवश्य जाइये।"

रूपा—"धन्यवाद ! बस इनके साथ दोपहर का खाना खाकर चाचा औ गुलनार के साथ फ़िरोज को लेकर यहाँ उपस्थित हो जाऊँगी। कृपया फ़िरो को बुलवा दीजिए कि मुझे वहाँ पहुँचा दे।"

अमानी—"फ़िरोज तो बाहर प्रतीक्षा में खड़ा है...किन्तु आप दोपहर व खाना अतिथि-घर में नहीं खायेंगी। अपने मकान में खायेंगी। आपको क केवल इतना अवकाश है कि जाकर उन लोगों से मिल लें। अतिथि-घर वा लोगों को आज दोपहर के खाने के पश्चात पुरस्कार, उपहार आदि देकर लौट दिया जायेगा।"

यह कहकर अमानी ने एक दासी द्वारा फ़िरोज़ को बुलवाया और दोन अतिथि-घर की ओर रवाना हुए।

अमानी बड़ी अनुभवी स्त्री थी। उसने पहिचान लिया था कि राजा रूपमत से प्यार करने लगा है। रूपमती से मिलने और उससे बातें करने के पश्चा स्वयं उसके मन में रूपमती के लिये एक स्थान बन गया था। उसने सोच लिय था कि रूपमती केवल गायिका बने रहने के योग्य नहीं बल्कि इसे वह स्था मिलना चाहिये जो इसके गुणों के योग्य है और स्वयं राजा जिसका इच्छुक है

जब वह पहुँचे तो सब प्रश्न सूचक दृष्टि से उन्हें देखने लगे। रूपा के मुख
प्रसन्नता तो थी, किन्तु वह गम्भीर थी। वह आकर चुपचाप चौकी पर बैठ
और सब उसकी ओर इस प्रतीक्षा में देखने लगे कि क्या कहती है। रू
दो-एक बार चोर दृष्टि से गुलनार को मुस्करा कर देखा किन्तु मुँह से कु
बोली! आख़िर फ़िरोज़ ने मौन को तोड़ा और मुस्कराते हुए बोला—"चा
आपके और गुलनार के लिये आज्ञा हुई कि आप रूपमती बहन के साथ
भवन में रहेंगे।"

चाचा की प्रसन्नता की सीमा न थी। गुलनार की आँखें यद्यपि प्रसन्न
चमक उठीं, किन्तु अपने साथियों के मन टूटने के विचार से उसने अपनी
भावना को प्रगट होने से रोका और गम्भीर रही।

फ़िरोज़ बोला—"अब आप उठें और मेरे साथ चलें क्योंकि राज-आज्ञ
पालन में क्षण भर की देर नहीं होनी चाहिये।"

चाचा और गुलनार तो खड़े ही थे रूपा भी उठ खड़ी हुई और साथ व
गायिकाओं और साज़िन्दों को सम्बोधन करके बोली—"मैं आप सब बह
भाईयों का हार्दिक धन्यवाद करती हूं कि आपने इस दो दिन के परिचय मे
इतना अच्छा व्यवहार किया है कि मैं इसे कभी न भूलूँगी। यदि जीवन है
फिर मिलेंगे।"

सब उठ उठकर रूपा और गुलनार से गले मिलीं। चाचा ने अपनी
हाथ में उठाई ही थी कि फ़िरोज़ हँस पड़ा और बोला—"चाचा! आप
न कीजिये, आपका सारा सामान पहुँच जायेगा।"

सब हँस पड़े और फ़िरोज, रूपा, चाचा और गुलनार को लेकर राजम
की ओर रवाना हुआ। अतिथि-घर वाले खड़े उन्हें ईर्ष्या से देख रहे थे।

रूपा और गुलनार चलते-चलते हँसकर बातें करती जाती थीं।

गुलनार—"रूपा! कल रात जब हम तुम इन्हीं पगडंडियों पर चल
थे तो तुम कितनी घबराई हुई थीं। कैसे ठोकरें खाती हुई चल रही थीं,
पता न था कि हम तुम यहीं की हो रहेंगी।"

रूपा—"ठीक कहती हो?"

गुलनार—"फिर जब राजा सिंहासन पर विराजे तो तुम्हारी दशा क्या हो गई थी। मुझे तो डर हो रहा था कि कहीं तुम्हारे हृदय की गति न रुक जाये।"

रूपा हँस पड़ी और गुलनार की आँखों में आँखें डालकर बोली—"और मुझे उसी समय विश्वास हो गया था कि बस मैं और तुम, दोनों यहीं की हो कर रहेंगी।"

गुलनार आश्चर्य उसकी ओर देखने लगी और पूछा, "वह क्यों ?"

रूपा हँस पड़ी—"फिर वही। कह तो चुकी हूँ अवकाश में बैठ कर बताऊँगी।"

गुलनार झल्ला गई। बोली—'बड़ी नटखट हो...अच्छा मत बोलो मुझसे। जी चाहता है, मुँह नोच डालूँ तुम्हारा।"

रूपा हँसी के मारे लोट गई और ऐसी तीव्र हँसी कि फ़िरोज़ जो आगे-आगे चल रहा था पलट कर देखने लगा और पूछा—"क्या है ?"

रूपा तो हँसी के मारे बोल ही न सकी। गुलनार ने ऐसे उत्तर दिया जैसे बड़ी तंग आ गई हो—"कुछ नहीं भैया! बस चले चलो।"

फ़िरोज़ समझ गया कि रूपा ने गुलनार को कुछ छेड़ा है। वह भी हँसने लगा।

अमानी रूपा के लिये निश्चित मकान के सामने खड़ी उनकी बाट जोह रही थी। जब यह समीप पहुँचे तो उसने आगे बढ़कर स्वागत किया। अभिवादन हुए, एक दूसरे से परिचय हुआ, अमानी गुलनार से गले मिली और चाचा ने मुस्कुराते हुए अमानी के सिर पर हाथ फेरा। फ़िरोज़ वहीं रुक गया।

अमानी उन्हें मकान के भीतर ले गयी। मकान अन्तःपुर के बिल्कुल साथ लगा हुआ था। मकान क्या था, एक छोटा-सा महल था। आवश्यकता की वस्तुएँ थीं और ख्वाजा-सरा, दासियां सब हाथ बाँधे बाहर खड़े थे। चाचा ने तो आते ही पहले कमरे में डेरे डाल दिये किन्तु अमानी ने रूपा और गुलनार को सब कमरों में घुमाया। मकान की सजावट देखकर दोनों विस्मित हो गईं।

मुझे आज्ञा दीजिये कि आपके आने की सूचना राजमहल में पहुँचा दूं।"

अमानी चली गई। रूपा और गुलनार दोनों एक चौकी पर तकिय सहारा लगा कर बैठ गई। दोनों आश्चर्य में डूबी आस-पास की वस्तुओ निहार रही थीं। रूपा ने मौन को तोड़ा—"प्रकृति का चमत्कार देखो कि प झपकने में क्या से क्या कर दिखाती है। कहाँ मेरा चाँदनगर का कच्चा फूँस की छतों वाला घर और कहाँ यह महल। कुएँ से पानी के घड़े भर-भ उठा कर लाने वाली रूपा की सेवा के लिये आज दास-दासियाँ खड़ी हैं। वि पथ-भ्रष्ट हैं वह लोग, जो दैवी-शक्ति को स्वीकार नहीं करते।"

यह कहकर उसकी आँखें भर आई। गुलनार का भी गला भर आया अ बोली—"सच कहती हो रूपा! मान देना या अपमान के गढ़े में गिरा दे उसी के अधिकार में है।"

इधर तो रूपा और गुलनार में यह बातें हो रहीं थीं उधर अमानी अं में राजा से कह रही थी—

"महाराज! रूपमती उपस्थित हो चुकी हैं।"

राजा—"कौन रूपमती?"

अमानी—"वही जिनके बुलाने की आज्ञा मिली थी।"

राजा के होठों पर हल्की सी मुस्कान उत्पन्न हुई, जिसे अमानी ने तुर भाँप लिया।

अमानी—"दासी ने इनके सम्बन्ध में जो कुछ जाना है, उससे दासी ब प्रभावित हुई है, इसीलिये अन्त:पुर के साथ वाला भवन इनके रहने के लि निश्चित किया है।"

राजा के होठों पर मुस्कराहट आ गई—"हम तुम्हारे कार्य से बड़े प्रस हैं अमानी!"

अमानी—"महाराज की आज्ञा हो तो उन्हें उपस्थित किया जाये।"

राजा—"अकेली आई है?"

राजा—"गुलनार कौन है ?"

अमानी—"यह वह गायिका है, महाराज ! जो दरबार में सबसे पहले नृत्य के लिये खड़ी हुई थी।"

राजा—(सोचकर) "हाँ ! याद आ गया। क्या यह कोई सम्बन्धी है ?"

अमानी—"नहीं महाराज ! राज-अतिथि-गृह में ही एक दूसरे से जान पहचान हुई है। और दो-तीन दिन के आपसी मेल-जोल में स्नेह बढ़ गया है। रूपमती की इच्छा थी कि वह उसके साथ रहे। इतना कहना और आवश्यक समझती हूँ, कि रूपमती कोई व्यवसायी गायिका नहीं बल्कि आप ही की छत्र-छाया के एक गाँव चाँदनगर की रहने वाली है। पूर्वजों का धंधा, खेती करना है। संगीत तो केवल चाव के लिये सीखा है। जहाँ तक दासी का अनुमान है, रूपमती विद्या और ज्ञान के गुणों से भी सम्पन्न है।"

राजा के मुख पर प्रसन्नता के चिह्न उभरे, कुछ सोच कर बोला—"अच्छा रूपमती का अकेले आना उचित नहीं। दोनों उपस्थित हों !"

अमानी झुकी, और उल्टे-पाँव बाहर चली गई। रूपा और गुलनार, चौकी पर बैठी बातें कर रही थीं कि अमानी दिखाई दी। दोनों चौकी छोड़ उठ खड़ी हुई।

अमानी—(मुस्कुरा कर) "चलिये ! अभी ही आप की उपस्थिति की आज्ञा मिली है।"

रूपा और गुलनार, धन्यवाद के लिए झुक गई। अमानी, रूपा की ओर देखते, मुस्कुरा कर बोली—"बीबी ! सौंदर्य किसी गहने का अधीन नहीं, किन्तु महाराज के समक्ष जाने के लिये, उनका दिया पुरस्कार तो गले में होना आवश्यक है।"

करते हुये, अर्थ-पूर्ण मुस्कुराहट से देखकर कहा—"यह है राजप्रसाद
आप जा रही हैं। आप से अधिक सामीप्य किसी को नहीं मिला, रूपा ने
कर धृष्टि झुका ली, और मुस्कुराने लगी—यह प्रसाद संगमरमर के एक
चबूतरे पर बना था, जिसकी लम्बी-ऊँची मेहराबों में, रेशम के जालीदा
लटक रहे थे। अमानी दोनों को बाहर ठहरा कर, स्वयं पर्दा हटा कर
गई और तुरन्त पलट कर हाथ से आने का संकेत किया।

दोनों बढ़ीं, रूपा एक पग आगे और गुलनार बायीं ओर, एक पग
पर्दे के निकट पहुँच कर, रूपा ने सिर का आँचल एक बार फिर से ठीक
अमानी ने पर्दा हटाया और दोनों भीतर आ गईं। अमानी बाहर ही रह
नीचे कालीन बिछे हुये थे और सामने राजा, श्वेत रेशम के वस्त्रों से सुस
गाव तकिये से पीठ लगाये, टाँग पर टाँग रखे बैठा था। रत्नजड़ित कटार
धरी थी।

दोनों चुपचाप, धीरे-धीरे अभिवादन को झुकीं और फिर दृष्टि झुकाये
खड़ी हो गईं। रूपा को राजा की दृष्टि सिर से पाँव तक देख रही थी।
र सादा वस्त्रों में वह ऐसे लग रही थी मानों चीनी की पुतली खड़ी
कुछ क्षण बाद राजा धीमे स्वर में बोला—

"आगे बढ़ आईये !

रूपा के प्राणों में कंपन उठा, वह दृष्टि झुकाये, धीरे-धीरे पाँव
आगे बढ़ी और सिंहासन से कुछ दूरी पर खड़ी हो गई। राजा ने फिर
होकर कहा—"बैठ जाइये !"

दोनों वैसे ही आँखें झुकाये घुटने टेक कर बैठ गईं। रूपा कनखियों से
रही थी कि राजा की दृष्टि उसी पर जमी हुई है। वह सिमटी जा रही
पसीने-पसीने हुई जा रही थी और यह अनुभव कर रही थी कि शरीर पि
जा रहा है। बड़ी देर तक मौन छाया रहा।

आखिर राजा बोला—"तुम्हारा ही नाम रूपमती है !

आने का विचार क्योंकर उत्पन्न हुआ ?"

रूपमती ने सँभल कर तुरन्त उत्तर दिया—"महाराज ! यदि एक तुच्छ तिनका हवा के किसी झोंके से उड़कर राजमहल में आ गिरे तो इसमें अनहोनी क्या है ?"

रूपमती ने कनखियों से देखा कि राजा के होठों पर मुस्कुराहट खेल रही है।

राजा—"तुमने संगीत की शिक्षा कहां से पाई ?"

रूपमती—"अपने चाचा से सरकार।"

राजा—"हम तुम्हारी कला से बड़े प्रसन्न हैं रूपमती और राजमाता ने भी तुम्हारी प्रशंसा की है।"

रूपमती उठकर सादर झुकी और कहने लगी—"दासी के लिये इससे बढ़कर सम्मान और क्या हो सकता हैं।"

राजा—"हम तुम्हें गायिका नहीं समझते रूपमती। तुम्हें राजमाता की सेवा को भी श्रेय प्राप्त होगा और हम से भी मिल सकोगी।'

रूपमती—(गर्दन झुका कर) "दासी का सिर गौरव से ऊँचा हो गया है, महाराज !"

राजा—"सम्भव है, नये स्थान में तुम कुछ दिन घबराओ किन्तु हम आशा करते हैं कि यहां के वातावरण में तुम शीघ्र ही घुल-मिल जाओगी।"

रूपमती—"स्वामी ! भाग्यहीन है वह, जो प्रभु की छत्रछाया में पहुँचकर

गुलनार को पहनाये। दोनों आँखें झुकाये सम्मान के लिए उठीं और फिर बैठ गई। अमानी रूपमती के आँखों को चुंधिया देने वाले सौंदर्य को आश्चर्य-चकित खड़ी तक रही थी। राजा की दृष्टि भी इस प्रकाश की पुतली की परिक्रमा करने लगी। थोड़ी देर बाद राजा के संकेत पर अमानी ने चौकी पर से तान-पुरा उठा कर गुलनार के हाथों में दे दिया और स्वयं अलग हटकर स्तम्भ से लग कर खड़ी हो गई।

राजा—"तुम्हारे गले में भी कोयल है गुलनार! किन्तु शीघ्रता में तान को अधूरा न छोड़ जाया करो।" राजा के होंठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट आ गई।

गुलनार—(गर्दन झुका कर) "सत्य वचन, महाराज!"

राजा—(रूपमती से) "यदि कोई संकोच न हो रूपमती तो हम कुछ सुनना चाहते हैं।"

रूपमती—(झुक कर) "आज्ञा-पालन तो दासी का सौभाग्य है।"

राजा—(मुस्करा कर) "आराम से खुल कर बैठो, तुम इस समय दरबार में नहीं हो।"

रूपमती लजा कर झुक गई। होठों पर मुस्कुराहट आ गई राजा की कृपा-दृष्टि से साहस का संचार अनुभव कर रही थी।

गुलनार ने तानपुरा छेड़ दिया और संगीत की फुहार सी पड़ने लगी रूप मती पर मस्ती और उन्माद-सा छा गया। सिर पर आँचल ठीक करते हु पुरे से स्वर मिलाया और गाना आरम्भ किया—

"आज इस बज़्म में वह जलवा-मा होता है।
देखिये, देखिये इक आन में क्या होता है।

राजा फड़क गया और अनायास मुस्कुरा दिया। व्याकुलता

नाम न लेती थी। वह संकेत राजा की ओर था।

आगे गाया—

फिर नज़र झेंपती हैं, आँख झुकी जाती है,
देखिये, देखिये फिर तीर खता होता है।

तो राजा की आँखें मस्ती में स्वयं बंद हो गईं। बार-बार रूपमती पर डालता और आँखें बंद कर लेता था। रूपमती ने 'देखिये, देखिये फिर तार खता होता है', को इस ढंग से गाया कि राजा के मन में झंझावत-सा उत्पन्न हो गया। मन की दशा छिपाये न बनती थी। संगत और संगीत का जादू प्रभाव डाल रहा था। रूपमती भी खुलकर गा रही थी! आज ही तो उसे प्रियतम से मिलने का अवसर मिला था। कामनायें नवजीवन का संचार अनुभव कर रही थीं।

फिर कहा—

हाले-दिल उनसे न कहना था हमें, चूक गये,
अब कोई बात बनाएं भी तो क्या होता है।

राजा झूम गया और सिर के नीचे हाथ रख कर कुहनी के सहारे गाव-तकिये पर झुक गया। गुलनार सिर धुनने लगी। असमानी स्तम्भ के गिर्द बाँहों को यूं लिपटाये खड़ी थी जैसे अपने आप को गिरने से बचाने का प्रयत्न कर रही हो और स्वयं रूपमती की यह दशा थी कि हर पंक्ति को दोहराते हुए आवाज काँप-काँप जाती थी।

शौके-इज़हार अगर है तो मेरे दिल को न मोड़,
इसी आईना में तो तू जलवा नुमा होता है।

अन्तिम की पंक्तियाँ—गाईं तो रूपा की आँखों से फ़व्वारा सा उबल पड़ा। मन अधीर हो गया, आवाज़ रुक गई। तानपुरा छोड़ कर गुलनार बैठ गई और एक सन्नाटा-सा छा गया। थोड़ी देर में रूपमती सँभली।। उठ कर अभिवादन किया और सिर झुका घुटने टेक कर बैठ गई।

राजा भी सँभला और बोला—"धन्यवाद रूपवती! तुम्हारा संगीत मन में उतर गया।"

रूपमती मुस्कुरा कर फिर झुक गई ।

राजा—"अच्छा रूपमती ! आराम करो । हम राजमाता की सेवा में। दन करेंगे कि कल रात को हमारी सभा में आकर कृतार्थ करें ।"

रूपमती और गुलनार उठकर अभिवादन को झुकीं और उलटे पाँव ह हुई बाहर निकल आईं ।

२०

राजप्रासाद से निकलते ही विचारों का एक तूफ़ान रूपा के मन में । मन में कहती आ रही थी 'देखा रूपा ! भाग्य का चमत्कार, जब प्राती है तो यूं बनती है । कल रात ही की बात है सोच रही थी कि लक्ष्य तक पहुंचूंगी, कितना अन्तर है बीच में, किन्तु एक ही रात मे ल पूरी हो गई । जिसे देखने की इच्छा थी, उसे देख भी लिया और टता चाहती थी वह भी, प्राप्त हो गई । आज मुझ से बढ़कर सौभाग्य होगी, अब यदि मृत्यु भी आ जाये तो मुस्कुराहटों से उसका स्वागत करु नाने लगी—

साजन मोरे दरसन कियो निकसत गयो प्रान,
विरह का दुःख न जानियो न मिलन के सुख का मान ।

गुलनार चौंक पड़ी । हँसकर उसकी ओर देखते हुए बोली—"प्यारी ! व्य रचना हो रही है ?"

रूपा हँस पड़ी—"हाँ यूं ही एक दोहा याद आ गया ।"

गुलनार—"वह तो मैंने सुना, किन्तु इसका अर्थ क्या है ?"

रूपा—"अर्थ ? यह सहज और साधारण है।"

गुलनार—"शब्दार्थ नहीं···मुझे तो वह समझाओ जो मन के भीतर है।"

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी और लिपट कर बोली—"हाँ, हाँ! वच
देती हूँ, बताऊँगी, आज ही रात को बताऊँगी।"

गुलनार—(हँस कर) "अभी क्यों नहीं बता देतीं ?"

रूपा—"(हँस कर) बड़ी लम्बी कहानी है, रात को ही सुनाऊँगी···दि
में कहानी सुनने से यात्री रास्ता भूल जाता है।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं, भवन आ गया।

चाचा दोनों को गहनों में लदी हुई देखकर चकित रह गया और फूला
समाया। विश्वास हो गया कि अब राजभवन से निकलने की कोई सम्भाव
नहीं। तुरन्त चाची की याद आई और बोला—"रूपा! तुम्हारी चाची
हमारी बाट जोह रही होगी, उनके बिना मुझे चैन नहीं।"

रूपा और गुलनार दोनों दबे होंठों मुस्कराने लगीं। रूपा ने उत्तर दिया-
"हां चाचा! मेरा मन भी वहीं अटका हुआ है। अमानी आ जायें तो उन
कहें कि चाची के बुलाने का प्रबन्ध करें। उन्होंने इस बात का वचन दिया है

यह बातें अभी हो ही रही थीं कि अमानी मुस्कुराती हुई भीतर आ
रूपा और गुलनार आदर के लिए खड़ी हो गई। अमानी ने दोनों का म
चूमा और बधाई देकर बैठते हुए बोली—"देखो बीबी! अब यह सम्मान
भुलाना और नये होना छोड़ दीजिये।"

कुछ नहीं।"

तीनों की तीनों हँसने लगीं।

रूपा—"हो सकता है कि मेरा ठहराव यहाँ कुछ लम्बा हो जाए, इसलि चाहती हूँ कि चाची को कुशलता की सूचना भिजवा दूं, जिससे वह चिन्त न करें।"

अमानी उसकी ओर अर्थपूर्ण मुस्कुराहट से देखकर बोली—"ठहराव वे लम्बा होने का तो प्रश्न ही समाप्त हो चुका है बीबी! अब तो आप यहं रहेंगी। आपकी चाची को लेने के लिए कल ही कुछ व्यक्ति भिजवा दिये जायेंगे आदेश दे दिया गया है और आपकी सेवा के लिए ज़र्रीन को नियुक्त किया है उसे आप चाची के लिए पत्र दे दीजिये।"

रूपा—"यह ज़र्रीन कौन है?"

अमानी—"ज़र्रीन राज-दुर्ग का मुख्य अधिकारी है। सब ख्वाज़ा-सरा दास-दासियाँ उसके अधीन हैं। अच्छा, अब मुझे आज्ञा दें।"

रूपा यह सूचना देने के लिए चाचा के कमरे में चली गई। गुलनार बाहर तख्तपोश पर बैठी पान बना रही थी कि एक दासी ने आकर ज़र्रीन के आने की सूचना दी। गुलनार ने दृष्टि उठाकर देखा। एक सजीला युवक सिर से पाँव तक सुनहरी कपड़े पहने, कमर में कटार लगाये सामने खड़ा झुक कर अभिवादन कर रहा था। गुलनार ने उसे गम्भीर दृष्टि से निहारा और कुर्सी की ओर संकेत करके बोली—"बैठो।"

युवक प्रणाम करके बैठ गया।

गुलनार—"तुम्हें ज़र्रीन कहते हैं?"

युवक के मुख पर हल्की-सी लालिमा दौड़ गई, बोला—"जी सरकार।"

गुलनार ने चंचलता से मुस्कुरा कर पूछा—"क्या यह नाम तुम्हारे सुनहरी पहनावे के आधार पर रखा गया है केवल थोड़े समय के लिए?"

ज़र्रीन उसकी छेड़ को भाँप गया, मुस्कुराने लगा और उत्तर दिया—"नहीं सरकार! सेवक सदा ज़र्री ही है। आठों पहर ज़र्री है।"

गुलनार को उसके उत्तर पर हँसी आ गई। बोली—"अति सुन्दर।"

फिर पानदान उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"पान खाओ।"

ज़र्रीन उठकर ससम्मान खड़ा हो गया और गिलौरी हाथ में लेकर बैठ गया।

गुलनार—"तुम पान नहीं खाते ?"

ज़र्रीन—"जी ! खाता हूँ सरकार।"

गुलनार—"फिर गिलौरी को हाथ में लिए क्यों बैठे हो ?"

ज़र्रीन—"अशिष्टता के विचार से सरकार !"

गुलनार—"नहीं...खाओ।"

ज़र्रीन ने मुस्कुराकर गिलौरी मुंह में रख ली।

गुलनार—"तुम मुझे बार-बार सरकार क्यों कहते हो ?"

ज़र्रीन—(मुस्कुरा कर दृष्टि झुकाए) "आप सेवक की सरकार ही तो हैं सरकार।"

गुलनार ने सुन लिया, उसकी चंचलता पर मुस्कुरा कर उठीं और भीतर चली गई। थोड़ी देर में रूपा से चाची के नाम का पर्चा लिखा ले आई और ज़र्रीन के हाथ में थमाकर मुस्कुराते हुये बोली—"यह लो सरकार का पत्र चांदनगर के लिए।"

ज़र्रीन ने उठकर पत्र ले लिया और आज्ञा चाही।

उसके जाने के बाद रूपा बाहर आई। गुलनार की ओर देखकर मुस्कुराई और बैठ कर बोली—"सरकार सेवक पर क्यों बिगड़ रही थीं ?"

गुलनार रूपा के परिहास को भाँप गई और अनायास हँस पड़ी, बोली—"हूँ, अब समझी। तुम्हारे कान इधर ही लगे थे।"

रूपा हँसकर लिपट गई—"अच्छा बताओ क्या-क्या बातें हुईं इस सेवक से ? बड़ा चंचल जान पड़ता है।"

गुलनार—(हँसते हुए) "वास्तव में बड़ा चंचल है यह सेवक।"

रूपा—(हँसकर) "फिर बताओ तो सही, बातें क्या कुछ हुईं इस सेवक से ?"

गुलनार—"कहानी लम्बी है, रात को सुनाऊँगी। दिन के समय यात्री रास्ता भूल जाते है।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

अब तक रूपा को समय ही न मिला था जो ख्वाजा-सराओं और दासि
से परिचित होती। सबको सामने बुलाकर उनमें से एक-एक का नाम त
काम पूछा और फिर उन्हें खाने-पीने, नहाने-धोने और सोने-बैठने के सम्बन्ध
आवश्यक आज्ञा देकर भिजवा दिया। इधर-उधर की बातों, साधारण देख-भ
और अपने, गुलनार तथा चाचा के लिए कमरों के जुटाने में दिन बीत गया

रात को खाने आदि से निवटकर अपने-अपने कमरों में जा लेटे, कि
गुलनार जो रात होने की प्रतीक्षा बड़ी अधीरता से कर रही थी उठकर रू
की मसहरी में आ बैठी और कहने लगी—"लो रूपा, रात हो गई और
कहानी सुनने में यात्री के रास्ता भूलने का कोई खटका नहीं। सुनाओ,
उत्सुक हूँ।"

रूपा हँस पड़ी और मसहरी में स्वयं भी उठकर बैठ गई।

रूपा—"अच्छा लो सुनो बड़ी बहन! इससे पहले मैंने एक दिन अप
कहानी अपनी एक बहुत प्यारी सखी चम्पा को सुनाई थी। उसे मैं बड़ी ब
कहती थी। अब होनी ने तुम्हें मेरी दूसरी बड़ी बहन बना कर मुझसे मि
दिया है। तुम्हें भी सुनाती हूँ। किन्तु उस दिन में और आज की रात में धर
और आकाश का अन्तर हो गया है। उस दिन मैंने यह कहानी रो-रोकर सुन
थी किन्तु आज तुम्हें हँस-हँस कर सुनाती हूँ।"

यह कह कर रूपा ने अपने जन्म की, विचित्र सपने की, चौधरी के बेटे अ
सेठ के उससे ब्याह के आग्रह, अपने इन्कार और फिर दरबार में आने तक
इस समय तक की एक-एक बात गुलनार को सुना दी और अन्त में बोली—
"अब शायद तुम उस दोहे का अर्थ समझ गई हो जो राजप्रासाद से निकल
समय अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया था।"

गुलनार स्तब्ध उसे तके जा रही।

रूपा फिर बोली—"हाँ बहन! इतनी बात मुझे अब भी खटक रही है कि
मेरा प्रियतम, मेरे स्वप्न का लक्ष्य यदि राजा न होता तो ठीक था।

गुलनार हँस पड़ी परन्तु कुछ न बोली।

गुलनार—(वैसे तो झुंझलाहट में) "क्या कही ? मिट्टी ? मुझे भली-चंगी जागती को कह रही हो कि सो रही हूँ।"

रूपा हँसी रोकते हुए बनावटी गम्भीरता से बोली—"हाँ, सचमुच सो रही हो। यदि अभी सिद्ध कर दूँ तो क्या दोगी ?"

गुलनार और भी झल्ला गई—"बस मुँह नोच डालूंगी तुम्हारा···यही दूंगी बड़ी आई सिद्ध करने वाली।"

रूपा हँसते-हँसते दोहरी हो गई और गिरते-गिरते गुलनार से लिपट गई। गुलनार को भी हँसी आ गई। अभी दोनों हँस ही रही थीं कि सामने से ज़रीन आता दिखाई दिया।

रूपा—"लो वह चला आ रहा है सरकार का सेवक···मैं तो खिसकती हूँ।"

रूपा हँसती हुई मकान की ओर चल पड़ी। गुलनार उधर ताकने लगी। देखा कि ज़रीन सीधा उन्हीं की ओर आ रहा है। पास पहुँच कर ज़रीन झुक गया। गुलनार ने मुस्कुरा कर छेड़ते हुए पूछा—"कहो क्यों आये सरकार ?"

ज़रीन के होंठों पर भी मुस्कराहट आ गई, चंचलता से दृष्टि झुका कर ...—"सरकार ! सेवक यह कहने के लिये उपस्थित हुआ है की आपका पत्र ...ड़के ही भिजवा दिया था।"

गुलनार—(गम्भीरता से) "हमने तो कोई पत्र नहीं दिया।"

ज़रीन—"सरकार ही ने तो दिया था, सरकार !"

गुलनार—"देखो मैंने तुम्हें पहले भी मनाही की है कि मुझे सरकार मत ...हो।"

ज़रीन—"तो फिर सेवक और क्या कहे सरकार ?"

गुलनार—(कठोर स्वर से) "मैं कुछ नहीं कहलवाना चाहती।"

ज़रीन—" फिर तो यह बड़ी मुश्किल हुई सरकार।"

गुलनार के होंठों पर रोकते-रोकते मुस्कराहट आ गई—"तुम्हें कोई रोग है ?"

ज़र्रीन—"यह तो पता नहीं सरकार।"

गुलनार—"तुम्हें अपने रोग का भी पता नहीं ?"

ज़र्रीन—"कोई वैद्य-हकीम ही जान सकता है सरकार।"

गुलनार "कोई उपचार करवाओ ?"

ज़र्रीन—"जब भाग्य खुलेगा, कोई उपचार करने वाला भी मिल जायगा

गुलनार हँसी रोक न सकी, किन्तु ज़र्रीन के होंठों पर मुस्कुराहट तक न। गुलनार उसकी चंचलता को खूब समझ रही थी, बोली—ज़र्रीन तुम त नटखट हो।"

ज़र्रीन—"सच कहती है सरकार।"

गुलनार—"तुम्हारे बच्चे भी तुम्ही जैसे चंचल हैं ?"

जर्रीन—"सेवक तो स्वयं बच्चा है सरकार।"

गुलनार—"क्यों तुम्हारी पत्नी नहीं ?"

जर्रीन—"कहाँ सरकार ! सेवक ने तो आज तक सपने में भी नहीं देखी।"

गुलनार ने बहुत प्रयत्न किया कि हँसी को रोके, पर हँसी थी कि रुकती न थी।

गुलनार—(हँसते हुए) "अच्छा···तुम मेरे सामने से चले जाओ !" ज़र्रीन उस आज्ञा का पालन प्रसन्नतापूर्वक किया और चला गया।

भीतर रूपा, दोनों की बातचीत सुन कर मारे हँसी के लोट-पोट हो रही। जब गुलनार भीतर आई, तो दोनों एक-दूसरे को देख कर बहुत हँसीं।

रूपा—(हँसते हुए) "बहुत नटखट है।"

गुलनार—"क्या पूछती हो ऐसी चंचलता तो मैंने आज तक नहीं देखी।"

रूपा—(हँसकर) "पहल भी तो तुम्हीं ने की थी।"

गुलनार—(हँसकर) "हाँ, मैंने उसके सुनहरी वस्त्रों पर फबती कस दी। किन्तु अब तो यह झाड़ होकर लिपट गया है।"

ार—(हँसकर) "किन्तु अब तो यह खेल निबाहना ही पड़ेगा
वल इतना है कि न तो मेरी गम्भीरता से प्रभावित होता है और
बुरा मानता है।"

यह बातें हो ही रही थीं कि चाचा के पुकारने पर रूपा लपक
उसके कमरे में पहुंची।

—"क्या बात है चाचा ?"

—"भई, वह चाँदनगर किसी को भिजवाया ?"

—"जी हां ! हरकारा तो जा भी चुका।"

—"तुम्हें क्यों कर ज्ञात हुआ ?"

—"अभी-अभी जर्रीन आया था। बड़ी बहन को बता कर गया है

—"यह जर्रीन कौन है ?"

—"दुर्ग का मुख्य अधिकारी।"

—"तो फिर क्या बता गया है, कब तक आयेगी तुम्हारी चाची !

—"बस, अधिक से अधिक परसों तक।"

—(हँस कर) "हरकारा पहुँचने पर प्रसन्न तो बड़ी होगी।"

—"क्यों नहीं चाचा।"

—(हँस कर) "आने दो, कैसा चिढ़ाता हूँ। मुझे मूर्ख, बुद्धिही
या कहा उसने।"

और चाचा दोनों हँसने लगे।

२१

साँझ होते ही, रूपा और गुलनार की रात की सभा की तैयारी के लिए, सेयों ने वस्त्रों को सुगन्धित किया, और गहनों को सजाकर रख दिया। खाने निपटते ही, दोनों शृङ्गार करके अमानी की प्रतीक्षा करने लगी।

रूपा—"मेरा अनुमान है कि राजमाता भी संगीत में निपुण है। जभी तो जा ने उन्हें आमंत्रित किया है।"

गुलनार—"तुम्हारा अनुमान ठीक ही है। उस दिन जो तुम्हारा गाना बार में सुनकर उन्होंने प्रशंसा की, यह केवल संगीत-विद्या की सूझ-बूझ रखने ले ही कर सकते हैं।"

रूपा—"मेरा विचार है कि आज तुम्हारा गाना भी अवश्य सुना जायेगा।"

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि अमानी आ पहुँची और रूपा की ओर कुरा कर देखते हुए बोली—"प्रतीक्षा भी कितनी सुहावनी होती है!"

रूपा कुछ लजा सी गई, और तीनों राजप्रासाद की ओर चल दीं। रूपा मन में जो झिझक और संकोच कल था, वह आज न था। पग इस उत्साह उठ रहे थे कि यह थोड़ा अन्तर एक ही बार सिमट के आ जाये तो अच्छा हो।

राजप्रासाद के निकट पहुँचते ही उनका मस्तिष्क नाना प्रकार की सुगंधों सुवासित हो उठा। रेशमी जालीदार पर्दों से प्रकाश छन कर आ रहा था। मानी दोनों को साथ लिये भीतर आई और तीनों सादर राजसिंहासन के

ाथों में लिये आती दिखाई दीं। इनके आगे-आगे अमानी सिर झुकाये चल रही
ी। दोनों समझ गई कि राजमाता तथा महाराज पधार रहे हैं।

ज्यूं ही अमानी ने बढ़ कर पर्दा हटाया दासियाँ भीतर चली आई। रूपा
ौर गुलनार उठ खड़ी हुई। राजमाता और महाराज सामने आये। दोनों
ादर अभिवादन को झुकीं और फिर आँखें झुका कर खड़ी हो गई। राजमाता
ौर महाराज ने मुस्कुराकर उन्हें देखा। फिर राजमाता सिंहासन पर और
हाराज उनके साथ वाली कुर्सी पर बिराजे। रूपा और गुलनार खड़ी थीं और
से ही खड़ी रहीं। राजमाता की दृष्टि रूपमती पर जमी थी। महाराज ने
हले रूपा का और फिर गुलनार का परिचय दिया। दोनों बारी-बारी अभि-
ादन को झुकीं। राजमाता के होठों पर मुस्कान और आँखों से स्नेह टपक
हा था।

राजमाता ने अमानी की ओर दृष्टि उठाई और वह तुरन्त आगे बढ़ी। एक
ोटे से सुनहरी सन्दूकचे से, जिसे वह हाथों में लिये खड़ी थी, दो जड़ाऊ झूमर
िकाल कर एक रूपमती और दूसरा गुलनार के माथे पर लगा दिया। दोनों
ः अभिनन्दन के लिए फिर झुक गई। राजमाता और महाराज दोनों मुस्कुराने
गे।

राजमाता—"बैठ जाईये!"

दोनों सादर झुक कर बैठ गई। सिंहासन के पीछे दासियाँ मोमबत्तियों के
ानूस लिये खड़ी थीं। गुलनार ने कनखियों से देखा कि ज़र्रीन भी इन्हीं के मध्य
ड़ा मुस्कुरा रहा है, और उसकी दृष्टि गुलनार ही पर जमी हुई है।

राजमाता—(मुस्कुराते हुए) रूपमती! हम परसों दरबार में तुम्हारे गाने
प्रसन्न हुए।"

रूपमती—"दासी का सौभाग्य है, सेविका का मान बढ़ा सरकार।"

राजमाता—"अब हम पहले गुलनार को सुनना चाहते हैं।"

गुलनार बैठे-बैठे सीने पर हाथ रख कर झुकी और अमानी ने तुरन्त तान-
पुरा उठा कर रूपमती के हाथ में दे दिया। रूपमती ने तार छेड़े, लय चल

राजा—"रूपमती ! हमने तुम्हें उर्दू में और फ़ारसी में भी सुना। तुम दोनों में निपुण हो। क्या उच्चकोटि की सुलझी हुई साहित्यक रुचि है ? भाषा की कविता के विषय में तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपमती—"महाराज ! भाषा की कविता को यदि जादूगरी कहा जाये तो उचित इसमें वही कोमलता और माधुर्य है जो कि फ़ारसी में है। किन्तु सहल, सादा और सुलझी हुई यूँ कि बस यही कह सकते हैं कि जादू है जो सिर चढ़ कर बोलता है। हृदय की भावनाओं को इस आकर्षक ढंग से उपस्थित करती है जिसके सत्य से इन्कार सम्भव नहीं, सुनिये—

और चोट बच जात है कछुक पाय के ओट,
पलक ओट प्रीतम भये लागत दूनी चोट।

कितना सूक्ष्म, कितना अछूता और कितना सत्यमय विचार है। और घाव तो ऐसे हैं कि यदि ढक जायें तो भर जाते हैं, किन्तु प्रीतम सामने हो तो चोट है ही और ओझल हो जाये तो चोट दुगनी।

फिर बिछोह की मारी राधा के घनश्याम उसे छोड़ गये, अपनी विवशता झुँझला कर यूँ बोल उठती है—

हाथ छुड़ायके जात हो निबल जान के मोह,
हृदय में से जाओगे तो मर्द बदूँगी तोय।

कितनी सच्ची बात है महाराज ! और नारी-जाति की भावनाओं का कितना सुन्दर प्रतीक ?"

राजा बोला—"धन्य है रूपमती ! हम बहुत प्रसन्न हुए। तुमने वास्तव में हमारी सभा को स्वर्ग बना दिया है।"

रूपमती मुस्कुरा कर झुक गई।

राजमाता और राजा उठ खड़े हुए और सभा समाप्त हो गई। रूपमती और गुलनार अभिवादन करके विदा हुईं।

२२

इनगर में राजा के हरकारे का पहुँचना एक ऐसे अचम्भे की वात थी, किसी को कल्पना तक न हो सकती थी। घर-घर चर्चा चाची के का चर्चा था। रात-भर में ही यह सूचना हवा की भाँति आस-पास के फैल गई। और जब सवेरे चाची रथ में सवार होने लगी तो सैंकड़ों ग उसे विदा करने के लिये एकत्र हो गये। सब ने हँस-हँस कर बधाई पा की सखियों ने प्यार भरे उपहार साथ किये और चाची को हँसी की गूंज में विदा किया।

ची राजदुर्ग में पहुँच गई। रूपा को गले से लगाया, गुलनार को प्यार और चाचा से भेंट तो चकवा-चकवी का मिलन था। वही हँसी-ठठोल, हमा-गहमी। मानो रात-दिन त्यौहार हो। उमड़े हुए पवन में फिर वसंत।

न्दर्य वह दीपक है, जिसका प्रकाश आँखों को आभा और मन की अँधेरे को उजाला देता है और यदि वह कला और विद्या के गहनों से भी सुसज्जित उसका आकर्षण, उसकी मोहिनी, असीम हो जाती है। शारीरिक और त सौन्दर्य का मिश्रण, मानव को आकाश पर उठा कर ले जाता है।

राजदुर्ग में रूपमती का आगमन तो एक सुन्दर गायिका और नर्तकी के ही हुआ था, किन्तु धीरे-धीरे अपने ज्ञान, कला की निपुणता और प्रसन्न- के कारण उसने सबको मोहित कर लिया।

रहने लगी। यहाँ तक कि बीच में से अमानी का साधन भी उठ गया। कुछ ही दिनों में वह ऐसी रच गई, मानो बरसों से राज-महल की ही रहने वाली हो और राजा तो रूपमती के लिये बावला हुआ फिर रहा था, चाहे राज-सभ चाहे राजप्रासाद का एकाकीपन बस रूपमती ही रूपमती थी। उसके बिना क्षण भर भी चैन न था।

राजा की उसे जीवन-साथी बनाने की इच्छा दिन-प्रतिदिन प्रबल हो रही थी, जिससे उनके मिलन में तनिक सी भी बाधा न रहे। इस विषय में, राजमात ने भी अनुमति दे दी थी किन्तु अब स्वयं बात कैसे करे? एक ओर राजसी वैभव और दूसरी ओर संकोच और लाज।

इस कार्य के लिये बहुत सोचने के बाद राजा की दृष्टि अमानी पर ही पड़ और एक दिन चुपके से अकेले में बुला कर उसे कह दिया—"अमानी! रूपमत ा विचार ज्ञात करके हमें बताओ···हम उसे महारानी देखने के इच्छुक हैं।'

अमानी को स्वयं रूपमती से ऐसा लगाव उत्पन्न हो गया था, कि उसक ादिक इच्छा भी यही थी। आँखें झुका कर मुस्कुराते हुए कहा—"महाराज ासी को यह साहस न होता था कि स्वयं यह बात आप से कहे किन्तु सत्य य ै कि बीबी रूपमती वास्तव में इस योग्य हैं कि महारानी ही बनें। भगवान् क ान्यवाद है कि दासी की यह इच्छा पूरी हुई।"

राजा—(मुस्कुरा कर) "हम तुम्हारी योग्यता की प्रशंसा करते हैं अमानी इस विषय में हमें बहुत कुछ सोचना पड़ा। देखो! अब विलम्ब न हो।"

अमानी—'यह कहने की आवश्यकता नहीं माहाराज! दासी के कर्त्तव्य पालन में कोई चूक न होगी।"

यह कहकर अमानी अभिवादन में झुकी और पर्दा हटा कर बाहर आ सीध रूपमती के पास पहुँची। मन अति प्रसन्न, मुख खिला हुआ और होंठों प मुस्कान थी।

: की वातें हुई। फिर रूपमती ने ज़र्रीन का वर्णन छेड़ा, हँसते हुए बोली—
ो वहिन ! यह ज़र्रीन वड़ा मनोरंजक व्यक्ति है।"

अमानी—(हँसकर) "हाँ, वड़े खिले मन का युवक है। साथ ही वड़ा
फ़दार और सुशील है। इसी कारण इतनी अल्प-आयु में इतनी बड़ी उपाधि
पहुँच गया कि महाराज ने विश्वसनीय समझते हुए दुर्ग का रक्षक नियुक्त
दिया।"

रूपमती ने कनखियों से देखा कि गुलनार इस वात से कुछ झेंप सी रही है
दवे होंठों मुस्कुराते हुए कढ़ाई में व्यस्त है। उसे कुछ और छेड़ने के आशय
ोली—"हाँ वहिन ! वड़ा ही सुशील है। हमारी वहन को सरकार कहकर
ोधित करता है और अपने लिये 'सेवक' शव्द का प्रयोग करता है।"

गुलनार इस संकेत को तो न समझ सकी, किन्तु वैसे हँसने लगी और
ी—"जी मैं जानती हूँ, वहुत ही चंचल है।" रूपमती और अमानी भी
ने लगीं।

गुलनार—(अमानी की ओर देखकर) "वहिन ! जर्रीन से वढ़ चढ़कर
यह नटखट हैं, और इसी ने मेरा नाक में दम कर रखा है।"

अमानी—(हँसकर) "भई ! आप दोनों तो पहेलियों में वातें कर रही हैं।
छ वताओ तो सही यह किस्सा क्या है ?"

गुलनार—(हँसकर) "नहीं वड़ी वहन ! आप कोई भ्रम मन में न लायें।
स वात केवल इतनी है कि वह मुझे 'सरकार' कहकर पुकारता है, मैं उसे मना
रती हूँ, पर वह मानता ही नहीं।"

अमानी—(गम्भीरता से) "यह तो वड़ी अशिष्ट वात है, मैं उसे डाटूंगी।"

रूपमती—(हँसकर) "नहीं वड़ी वहन ! इसकी आवश्यकता नहीं, यह तो
सी-ठठोली है।"

अमानी—"यही तो, वरन् मैं उसे भली प्रकार जानती हूँ वह वड़ा सुलझा
या और नम्र युवक है।"

इन वड़ी बहन के सम्मान से चुप हूँ ।" तीनों हँसने लगीं ।

अब तक अमानी बैठी सोच रही थी कि जिस उद्देश्य के लिये आ
उसका आरम्भ किस प्रकार करे । चाहती तो थी, रूपमती से अकेले में बातें
किन्तु यह सम्भव न था कि रूपमती को गुलनार के पास से उठाकर ले जा
दूसरे चाहे कैसे भी हो, गुलनार से तो यह बात छिपी नहीं रह सकती थं
यह सोचकर उसने उचित यही समझा कि गुलनार के सामने ही बात कर दे

अमानी—(रूपमती को मुस्करा कर देखते हुए) "बीबी ! मैं तो इस स
आपको एक विशेष बधाई देने के लिये उपस्थित हुई हूँ ।"

रूपमती—(गम्भीरतापूर्वक उसकी ओर देखकर) "क्या बात है बहन ?

अमानी—"मैं सच कहती हूँ, मुझे इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है और म
विश्वास है कि राज्य में हर व्यक्ति इससे प्रसन्न होगा ।"

रूपमती और गुलनार आश्चर्य से उसे देखने लगीं ।

रूपमती—"किन्तु कुछ बताओ तो सही ?"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "बात यह है कि मालवा के राज्य की बधाई हो

रूपमती का रंग श्वेत पड़ गया, हृदय धड़कने लगा । स्तब्ध, अमानी
देखने लगी और फिर बोली—"वह क्या कह रही हैं आप बहन ?"

अमानी—(वैसे ही मुस्कराते हुए) "यही कह रही हूँ कि मालवा के रा
की बधाई हो ।"

रूपमती—(गम्भीरता से) "स्पष्ट कहिये कि इससे आपका अभिप्र
क्या है ?"

अमानी—(मुस्कुराते हुए) "अर्थ यह है कि आप हमारी महारानी बन
वाली हैं और आपकी दासी होने के कारण सबसे प्रथम आपको बध
देती हूँ ।"

रूपा के होंठ सूख गये, मस्तिष्क चकरा गया और चुप सिर झुकाकर बै
गई । अमानी और गुलनार चिन्ता और आश्चर्य से उसे देख रही थीं । थो

ामानी—"जी हाँ ।"

ूपमती—"आपको क्योंकर ज्ञान हुआ ?"

ामानी के लिए इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो गया। वह यह कहना हती थी कि उसे स्वयं राजा ने इस आशय से भेजा है। सोचकर मुस्कुराते ोली—"यह पूछने की क्या आवश्यकता है ?"

ूपमती—(गम्भीरता से अमानी की ओर देखते हुए) "मेरे लिए इसका और जानना बड़ा आवश्यक है।"

अमानी फिर दुविधा में पड़ गई। सोचकर उत्तर दिया—"बीबी! हम ेवक हैं। राजा का प्रत्येक रहस्य समझती हैं। यह तो हमारा निसदिन ाम है। मैंने तो पहले ही दिन, जब आपको राजमहल से बुलावा आया ह अनुमान लगा लिया था और अब तो राजा का अभिप्राय स्पष्ट हो है।"

ूपमती—"यही तो मैं पूछती हूँ कि आपको राजा का अभिप्राय कैसे ज्ञात ?"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "पहले ही कह चुकी हूँ कि हम राजसेवक हैं राजाओं के रहस्य से भली प्रकार परिचित हैं।"

ूपमती को यह अच्छा न लगा, बोली—"बहन आप मुझसे अधिक समझ-हैं, जग-देखी हैं, किन्तु क्षमा कीजिए, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि ओं के रहस्य जानना और फिर उन्हें यूँ ही कहते फिरना हम दासियों को ा नहीं देता। आपने मुझसे यह कहने में बड़ी भूल की है। मैं विनती ी हूँ कि भविष्य में आप मुझसे इस विषय में कोई बात न करें।

अमानी का मानो नह सूख गया। लज्जा से धरती में गडी जाती थी।

वर्णन करें। हम दोनों के लिए यही उचित है।"

नी लज्जित होकर चुप हो गई और सिर झुका कर बैठ गई। ती थीं और सन्नाटा छाया हुआ था। अमानी को और कुछ कहने हुआ और आज्ञा लेकर चली गई।

; जाने के बाद रूपमती और गुलनार दोनों देर तक चुप बैठी रहीं लनार ने इस मौन को तोड़ा और बोली—"रूपा! तुम अमानी व या समझीं?"

ती—(कुछ देर के मौन के बाद) "तुम क्या समझीं?"

ार—"मेरा विचार तो यह है कि अमानी का अनुमान ठीक है।"

ती—"स्वयं मेरा भी यही विचार है।"

गुलनार—"किन्तु तुम इस समय उससे बिगड़ी क्यों?"

रूपमती—"पहले तो दासियों को यह चाहिए ही न कि यह राजाओं वे रहस्य को जानने का प्रयत्न करें। यदि अकस्मात वह उनका कोई रहस्य जान भी लें तो वह उन्हीं तक सीमित रहना चाहिए।"

गुलनार—"किन्तु उसने तो यह बात केवल तुम्हीं से की थी, इसलिए वि इसका सम्बन्ध तुम्हीं से है और तुम बुद्धिमती हो। इसमें बिगड़ने की क्य बात थी।"

रूपमती—"पहले तो इसका सन्तोष क्योंकर हो सकता है कि यह बात उसने और कहीं नहीं कही, दूसरे यह कि उसके मुँह से यह बातें मुझे अच्छी नहीं लगीं।

गुलनार—"क्यों?"

रूपमती—"इसलिए कि यदि वास्तव में राजा की यही इच्छा है तो इसकी सूचना मुझे स्वयं राजा अथवा राजमाता द्वारा मिलनी चाहिये। क्योंकि मुझे दोनों की निकटता प्राप्त है और दोनों की कृपा दृष्टि भी मुझ पर है। यदि उनके इस निश्चय की सूचना मुझे किसी दासी द्वारा मिले तो मुझे उसका कृतज्ञ होना चाहिये।"

गुलनार—निरुत्तर होकर चुप हो गई और मन ही मन उसकी तीक्ष्ण बुद्धि

छपाया, किन्तु इस समय इसे बताने में एक शंका सी उत्पन्न होती है। य
म्हारे लिए उलटा चिन्ता का कारण होगी। बस तुम से यही विनती करत
कि प्रार्थना करो भगवान इस अशुभ चोर का कभी साक्षातकार
राये।"

गुलनार ने देखा कि यह बात करते हुए रूपा के शरीर में सहसा कपकपी
ा हुई और उसकी आँखें डबडबा गई। उसने बढ़ कर उसे छाती से लगा लिय
ौर बोली—"रूपा! तुम्हारा हृदय बड़ा कोमल है। बस, मैं कुछ नहीं, पूछती
न को दृढ़ करो और स्वयं को सम्भालो।"

रूपमती संभल चुकी थी। मुस्कुरा कर कहने लगी—"तुम्हें मेरे मन की
र्बलता का अनुमान लगाने में भूल हुई। मेरा मन बहुत दृढ़ है। इतना कि
दाचित ही किसी स्त्री का होता है। भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि कभी
मेरे मन की दृढ़ता को परीक्षा में न डाले।"

उधर अमानी राजप्रसाद में अपनी और रूपमती की बातचीत सुना चुकने
बाद राजा से निवेदन कर रही थी—"महाराज! दासी को बड़ा अचम्भा
कि ग्रामीण वातावरण में पलने वाली कोई लड़की इतनी सूझ-बूझ वाली
र राजसी रहस्यों से इतनी परिचित क्यों कर हो सकती है जब तक प्रकृति
उसे विशेष मनो-मस्तिष्क प्रदान न किये हों। अब दासी इस विषय में कुछ
हने सुनने में विवश है।"

राजा—(अमानी की ओर देख कर मुस्कराते हुए) "अमानी! हम तुम्हारी
ाओं से बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। तुम्हें जाँच और परख में एक विशेष
गुणता प्राप्त है जो हमारी दृष्टि में प्रशंसनीय है। तुमने अपना कर्त्तव्य-
लन कर दिया। तुम राजसी कृपादृष्टि की पात्र हो। हम तुम्हें कभी नहीं
ंगे।"

अमानी ने झुक कर धन्यवाद किया और अभिवादन के पश्चात, पर्दा हटा
: बाहर आ गई।

२४

सूर्य अस्त हो रहा था। परछाईयाँ लम्बी हो गई थीं, और सूर्य की अन्तिम किरणें राजमहल के ऊँचे बुर्जों को विदाई के चुम्बन दे रही थीं। राजा, रेशम के श्वेत वस्त्र पहने, कमर में रत्न-जड़ित कटार लगाये, राज-उपवन की पगडंडियों पर टहलता फिर रहा था। सामने से रूपमती आती दिखाई दी। राजा पगडंडी से उतर कर गुलाब की क्यारी के पास जा खड़ा हुआ और रूपमती की प्रतीक्षा करने लगा। रूपमती पास पहुँच कर अभिवादन को झुक गई और दृष्टि झुका कर खड़ी हो गई। राजा थोड़ी देर दृष्टि जमाये खड़ा उसे देखता रहा।

राजा—(मुस्करा कर) "रूपमती ! तुम अमानी पर क्यों बिगड़ी ?" रूपमती भीतर-ही-भीतर काँप गई और समझ गई, यद्यपि अमानी ने यह बात उससे छिपाई थी, किन्तु वास्तव में वह महाराज का संदेश लेकर ही आई थी।

रूपमती—"महाराज ! प्राण-दान पाऊँ तो कुछ कहूँ।"

राजा—(मुस्करा कर) "तुम्हें यह कहने की आवश्यकता नहीं, रूपमती ! कहो, तुम पूरी स्वतन्त्रता से कहो !"

रूपमती—"महाराज ! राजप्रसाद के भेदों का दासियों तक पहुँचना, राजसी वैभव का अनादर है। यही समझ कर दासी ने अमानी से वह बात की जो महाराज तक पहुँची। उन्होंने बात अपने अनुमान के आधार पर की थी,

ावश्यकता नहीं रूपमती ! हम तुम्हारे विचार का आदर और अपनी भूल
कार करते हुये विश्वास दिलाते हैं कि अमानी तुम्हारी बात से अप्रसन्न न
न् उसने तुम्हारी प्रशंसा ही की है।"

रूपमती—"महाराज की कृपा का किस मुँह से धन्यवाद करूँ?"

राजा—(मुस्कुरा कर देखते हुये) "अच्छा, तो हम उस संदेश का उत्त
चाहते हैं, जो हमने भूल से दूत द्वारा भेज दिया था।"

रूपमती गर्दन झुकाये संकोच की मूर्ति बनी मौन खड़ी रही। थोड़ी दे
राजा ने फिर पूछा—"हम उत्तर चाहते हैं रूपमती !"

रूपमती—"महाराज ! दासी को स्वतन्त्र उत्तर देने की अनुमति दी जाये।

राजा के चेहरे का रंग बदल गया। बोला—"अवश्य तुम्हें स्वतन्त्रता है।

रूपमती—"महाराज ! राजा, सावन की उस घटा के समान होता है ज
ी कृपा द्वारा हर छोटे-बड़े की झोली आभामय-मोतियों से भर देता है
ु साथ ही उसमें वह बिजलियाँ निहित होती हैं, जो क्षण-भर में हरे-भ
ानों को राख और ऊँचे विशाल पर्वतों को टुकड़े-टुकड़े कर डालती हैं
राज ! न तो दासी की झोली इतनी बड़ी है कि इसमें राजसी कृपाओं क
ो समा सकें और न साहस ही इतना है कि उनके कोप को सहन कर सके
महाराज ! विनम्र प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे अपनी दासी ही रहने दे
ा अधिक की न तो मुझे इच्छा है और न मैं इसके योग्य हूं।"

रूपमती दृष्टि झुकाये बोलती चली जा रही थी और कनखियों से देख
थी कि राजा की दृष्टि उसी पर जमी हुई थी। वह उसके हर शब्द पर
रा रहा था।

रूपमती के चुप हो जाने के बाद वह थोड़ी देर टकटकी लगाये उसे देखता
। फिर हाथ में गुलाब का एक फूल लेकर उसकी ओर बढ़ा। चाहती थी
पीछे हटे, किन्तु ऐसे हो गई, मानो धरती ने पाँव पकड़ लिये हों। राजा
ग, रुक-रुक कर उसी पर दृष्टि जमाये बढ़ता चला आ रहा था। जितना
निकट आ रहा था, उतना ही रूपमती को यह अनुभव हो रहा था, कि
चुम्बकीय-शक्ति उसके शरीर को आगे खींच रही है। बड़े प्रयत्न से, पाँव

ये, दृढ़ खड़ी रही। राजा, बिल्कुल समीप पहुँच कर रुक गया, फिर उसके
पर हाथ रख कर, मुख पर दृष्टि जमाये मुस्कुराता रहा। रूपमती प
कुल स्वप्न की-सी दशा छा गई। आँखें बन्द किये, गर्दन झुकाए, चुप खड़
। उसे यूँ अनुभव हो रहा था कि उसके प्राण घुल रहे हैं और थोड़े ह
य में उसका अंग-प्रत्यंग घुल जायेगा।

राजा—(मुस्कुराते हुए) "इससे अधिक परीक्षा में न डालो बाज़बहादु
रूपमती!"

रूपमती ने दृष्टि उठाकर राजा के मुख की ओर देखा। लजा कर दृ
ा ली। इस समय उसकी आँखों में बला की चमक थी। होंठों पर अनायास
ी-सी मुस्कुराहट आ गई और बोली—"एक दासी राज-आज्ञा का कै
ंघन कर सकती है।"

राजा के होंठों पर प्रसन्नता की लहर आ गई। मुख, कुन्दन के समा
कने लगा। दूसरा हाथ बढ़ा कर फूल देते हुए बोला—"हम महारानी क
ाई देते हैं।"

रूपमती ने मुस्कराते हुये, फूल लेकर, आँखों से लगाया। अभिनन्दन म
ाने ही लगी थी कि राजा ने दूसरा हाथ भी उसके कंधे पर रख दिया औ
कुराते हुये बोला—"महारानी को अब इस शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं।"

रूपमती को अनायास हँसी आ गई; राजा भी हँसने लगा। यह पहला
सर था कि दोनों एक दूसरे के सामने 'शिष्टाचार' और राजनियम को भूल
हँस रहे थे।

२५

जब से रूपमती राजा के पास से वापस आई थी गुलनार को उससे अकेले बात करने का अवसर न मिला था। रात के खाने से निबट कर जब दासियाँ ली गई और चाचा-चाची भी अपने कमरों में चले गये तो गुलनार ने पूछा—कहो, क्या लाई, राजा के यहाँ से ?"

रूपमती हँस पड़ी और उत्तर दिया—"लाती क्या, बाज़ी हार आई हूँ।"

गुलनार जो उसके चेहरे से उसकी प्रसन्नता भाँप चुकी थी, हँसकर कहने ी—"क्यों बनाती हो, तेवर तो जीत के दिखाई दे रहे हैं।"

रूपमती—(हँसकर) "तुम्हारी इच्छा जो चाहे समझ लो, वरना मैं तो र और जीत में कोई अन्तर नहीं समझती।"

गुलनार—(हँसकर) "तुम्हारा दर्शन सदैव अनोखा होता है, वरना हार-र ही है और जीत-जीत ही है।"

रूपमती (हँसकर) "बहन ! प्रीतम से हारने में भी जीत ही का आनन्द इसलिये हार और जीत में कोई अन्तर नहीं।"

गुलनार—"अच्छा, पहेलियों में बातें करना छोड़ो, साफ़ बताओ..."

रूपमती—(हँसकर) "साफ़ ही तो बता रही हूँ कि स्वीकार कर आई अब इसे चाहे हार समझ लो चाहे जीत।"

गुलनार—(झुँझला कर) "मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। पूरी बात ताओगी तो समझूँगी।"

गुलनार—(हँसते हुए) "अच्छा, अब तो मैं चिढ़ चुकी और तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई। मुझे पूरी बात सुनाओ।"

रूपमती—"आज यह बात खुल गई कि कल अमानी जो आई थी वह वास्तव में राजा का सन्देश ही लेकर आई थी किन्तु उसने यह बात प्रगट नहीं होने दी।"

गुलनार—"अच्छा, तो फिर ?"

रूपमती—(हँसकर) "आज राजा ने स्वयं ही अपने विचार प्रगट कर दिये।"

गुलनार—(प्रसन्न होकर) "फिर ?"

रूपमती—(हँसकर) "फिर यह कि मैं हार गई और राजा ने यह फूल अपनी रानी को उपहार में दिया।"

गुलनार प्रसन्नता के मारे पागल-सी उससे लिपट गई।

रूपमती के कहने पर, राजमाता ने उनके विवाह से पूर्व ही, जरीन गुलनार का विवाह करवा दिया। गुलनार को अब महल और दुर्ग में वह निकटता प्राप्त हो गई जो अमानी को थी; बल्कि दुर्ग के सबसे बड़े अधिकारी की पत्नी होने के नाते उसका महत्व और भी बढ़ गया। राजा ने चाँदनग की जागीर चाचा के नाम कर दी और चाचा-चाची जागीर का आज्ञा-पत्र लेक प्रसन्नतापूर्वक लौट आये।

यद्यपि विवाह की तिथि तक के लिए राजमाता ने, राजा और रूपमती क मिलना-जुलना बन्द कर रखा था, किन्तु भावी-रानी के लिए अमानी द्वार निरन्तर प्रेम-पत्र आते रहते थे। रूपमती की ओर से यही काम गुलनार प था। दोनों मिलन की घड़ी के लिए व्याकुल थे और इन से कहीं बढ़ कर इ तिथि की प्रतीक्षा, राज-सम्बन्धी लोग कर रहे थे।

रूपमती और गुलनार की आपसी चुहलें, हँसी-ठिठोली होती ही रहती थी जब भी एकान्त मिलता, रूपमती गुलनार को 'सरकार' के नाम से सम्बोधित रके स्वयं को सेविका कहती। इन छेड़ों से सताकर उसे भी हँसाती और यं भी लोट-पोट हो जाती। दिन-रात यही चहकना था और यही ठहाके।

रूपमती के लिए कई दासियाँ स्नानगृह के लिए और शृङ्गार आदि के लिए नियुक्त थीं। इस पर भी राजमाता स्वयं, दो-तीन वार दिन में देखने को आ ती थीं।

अन्त में वह दिवस भी आ ही गया, जिसके लिए राजा और राजमाता उत्सुक थे। सवेरे ही से शामियाने तन गये, कनातें लग गईं, मखमल के फ़र्श बिछ गये। ख्वाजा-सराओं, दासियों ने राजप्रासाद को सजाया। नक्कार-खाने के शहनाई बजाने वालों ने नये राग छेड़े। उच्च अधिकारियों और अमीर-उमराव की पत्नियों की पालकियाँ, सुन्दर दासियों के झुरमुटों में उतरनी आरम्भ हो गई। राजदरबार की गायिकाओं और नर्तकियों ने संगीत और नृत्य से समाँ बाँध दिया। दिन-भर यही गहमागहमी रही और साँझ होते ही राज-दुर्ग का कोना-कोना प्रकाशमान बना दिया गया गोया कि यह चाँद और सूरज के मिलने की रात थी।

राजप्रासाद में उत्सव-भवन की सज-धज देखकर यूं अनुमान होता संसार भर का ऐश्वर्य का सामान यहीं एकत्र कर दिया हो। रेशम और ज़री के पर्दों के साथ सैंकड़ों कोमलांगनायें शीशे के फ़ानूसों में काफ़ूर की जोतें लिए खड़ी थीं और दूर राजसिंहासन के सामने गाने-नाचने वालियाँ तड़क-भड़क वस्त्र पहने, मूर्तिमान, राजा और रानी के आने की प्रतीक्षा में बैठीं थीं।

इधर राजमाता के महल में एक ओर दूल्हा श्वेत रेशमी वस्त्र धारण किये सिर पर रत्न जड़ित चमकता हुआ राजमुकुट लगाये गहनों से सज रहा था और दूसरी ओर दासियाँ दुल्हन को शृङ्गार से अप्सरा बनाने में व्यस्त थीं।

मानव-शरीर शृङ्गार द्वारा आलौकिक सौन्दर्य के साँचों में ढल चुके तो दूल्हा-दुल्हिन महिलाओं के झुरमुट में एक दूसरे के सामने हुए। दूल्हा-राजा की दृष्टि ज्योंही रूपमती पर पड़ी, वह इस रूप की देवी को देखकर स्तब्ध रह गया। झिलमिल-झिलमिल करते श्वेत रेश्मी वस्त्रों में सुसज्जित, सिर से पाँव तक रत्नों और मोतियों में जड़ी लाज से आँखें झुकाये खड़ी थी। राजमाता ने मुस्कुराते हुए दोनों के माथों को चूमा और जुलूस उत्सव भवन की ओर रवाना हुआ। आगे-आगे दाहिने-बायें सैंकड़ों कँवल हाथों में लिए सुन्दर दासियां, बीच में राजमाता, इनके एक ओर दूल्हा और दुल्हिन और पीछे चँवर हाथों में लिए अमानी और गुलनार और सबके पीछे रानियों का झुरमुट मुस्कुराहटों की कलियाँ और हँसी के फ़व्वारे बरसाता चला।

भवन में प्रवेश करते ही सब खड़ी हुई दासियां और खड़ी हुई गायिकायें, उठकर अभिवादन को झुक गई। राजमाता, दूल्हा और दुल्हिन सिंहासन पर बैठ गये। अन्तःपुर की दूसरी महिलायें दोनों ओर पंक्तियाँ जमा कर खड़ी हो गई। राजमाता ने थाल भर-भर कर मोती और रत्न बरसाये। फिर रानियों ने और

रूपमती, दूल्हा-राजा के साथ बैठी, आँखें झुकाये सबकी आँखों का केन्द्र बनी हुई थी। यद्यपि उसका परिचय यहाँ एक गायिका और नर्तकी के रूप में हुआ था, तथापि अपने रूप-रंग, सौन्दर्य, यौवन, ज्ञान-बुद्धि और शिष्टाचार से उसने सबको प्रभावित कर रखा था। जहाँ कहीं गायिका ने किसी अलाप से कोई समाँ बाँधा कि दोनों एक दूसरे को देख मुस्कुरा दिये।

गौरव और सफलता के इस चरम शिखर पर पहुँच कर, इस माया-रूपी समय में रूपमती का मस्तिष्क अपने बीते हुए समय के पन्ने उलटने लगा। चाँदनगर का चाचा का मकान, फूँस की छतें, दरिद्रता, चौधरी के बेटे की कुवृत्ति, सेठ का ब्याह-संदेशा, चाचा-चाची की आशायें, चम्पा का परामर्श, अपना दरबार में आने से इन्कार, चाचा का आग्रह, चाची का दुख—यह सब चित्र आँखों के सामने नाचने लगे। मन ही मन कहने लगी, 'रूपा! कोई नहीं जान सकता कि भाग्य का पलटा कब, कहाँ लगेगा? 'यत्न' निःसन्देह बड़ी चीज होगी, किन्तु, मैं क्या जानूँ 'यत्न'। इसके वर्षों से तैयार किये महल क्षण-भर में गिर जाते हैं। वही सफल है जिसके पीछे भाग्य हो।'

इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि पीठ पर राजमाता के हाथ रखने से चौंक पड़ी। वह कह रही थीं, "आधी रात हो गई है, अब सभा समाप्त कर देनी चाहिये।" एकबार दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा और लज्जा कर आँखें झुका लीं। राजमाता के होठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट आ गई और वह तुरन्त गायिकाओं को बन्द करने का संकेत करके उठ खड़ी हुईं। इनके साथ ही दूल्हा-दुल्हिन और दूसरी महिलायें भी खड़ी हो गईं। राजमाता ने दोनों का माथा चूमा और सभा समाप्त हो गई।

राजप्रासाद में महाराज, रानी-रूपमती और उनके साथ अमानी और गलनार रह गईं।

रानी रूपमती राज्य के शासन-प्रबन्ध में अपनी बुद्धि और सूझ-बूझ से राजा के समान ही महत्व रखती थी। इतनी बड़ी रानी होने पर भी वह अपने बीते जीवन को न भूली थी। राजा की स्वीकृति से उसने चाँदनगर में, पाठशाला, धर्मशाला तथा तालाब-बावली इत्यादि बनवाये। वहाँ के रहने वालों को भूमि के अधिकार दिये। चौधरी और सेठ को दरबार में बुलवा कर उनका मान बढ़ाया। प्राणों से अधिक प्यारी चम्पा को बुलाने के लिये, दास-दासियों और ख्वाजा-सराओं के साथ, सरकारी रथ को भिजवाया। गुलनार की सारङ्गपुर वाला गायिकाओं को भी न भूली, उन्हें भी अलग-अलग पुरस्कार भिजवाये। फ़िरोज़ ख्वाजा-सरा को राजप्रासाद का मुखिया बना दिया।

फूल भी इतना ही प्यारा था।"

रानी—(सोचते हुए) "मैं नहीं समझी, महाराज !"

राजा—(मुस्कुरा कर) "क्या इस स्थान पर पहले भी कभी आई हो? और ऐसे ही सुहाने समय में···"

रानी सोचकर याद करने लगी। राजा को हँसी आ गई, बोला—"हम भूलना न सीखे, तुम भुलाना न भूलीं।"

रानी दाँतों में उँगली दबाये याद कर रही थी। राजा ने दोनों हाथ उसके कंधों पर रख दिये और दृष्टि जमाये मुस्कुराता रहा। फिर पूछा—"अब भी याद नहीं आया ?"

रानी ने वैसे ही दाँतों में उँगली दबाये राजा की ओर देखा और इन्कार में केवल सिर हिला दिया। राजा को उस भोलेपन पर और भी प्यार आ गया। आँखें डाल कर मुस्कुराते हुये कहने लगा—

पत्ता-पत्ता डाली-डाली हाल हमारा जाने है,
न जाने तो गुल ही न जाने बाग तो सारा जाने है।"

रूपमती को याद आ गया। खिलखिला कर हँस पड़ी। चंचल होकर बोली—"हाँ, हाँ! याद आ गया। वास्तव में वह फूल इससे भी प्यारा था।"

दोनों हँसने लगे और रूपमती ने हँसते-हँसते अपना सिर राजा के वक्ष पर रख दिया। सामने से फ़िरोज़ लपकता हुआ आता दिखाई दिया। रूपमती अलग हट गई और दोनों उधर तकने लगे। पास पहुँच कर फ़िरोज़ अभिवादन को झुका।

रानी—"क्या कहना चाहते हो फिरोज़ ?"

फिरोज़—"महारानी! रथ पहुँच गया है और आज्ञानुसार दुर्ग के फाटक पर रुका हुआ है।"

रानी—(प्रसन्न होकर) "हाँ! आ गया? आ गई हैं बीबी ?"

फिरोज़—"जी! महारानी।"

फ़िरोज़—"महारानी ! चाँदनगर में बीबी न थीं, फिर रथ को दूसरे स्थान पर जाना पड़ा।"

रानी—"अच्छा। गुलनार, अमानी और सब दासियों को सूचित कर दो, कि वह स्वागत के लिये हमारे संग हों।"

फिरोज़—(झुककर) "जो आज्ञा, महारानी !"

फ़िरोज़ पलक झपकते ही, सैंकड़ों दासियों, अमानी और गुलनार को लिये उपस्थित हो गया।

रानी—(प्रसन्न मुख से) "महाराज ! आज्ञा दें, कि मैं अपनी बड़ी बहन के स्वागत को स्वयं जाऊँ ?"

राजा—"महारानी ! अवश्य जायें।"

रूपमती, राज-सी ठाट से दासियों के झुरमुट में घिरी, राज-दुर्ग के फाटक की ओर चल पड़ी। अमानी और गुलनार आगे-आगे और बाकी दासियाँ पीछे-पीछे दुर्ग के द्वार पर पहुँचीं तो दुर्ग रक्षक-दल ने सम्मान किया। चम्पा रथ में बैठी रूपमती का वैभव देख रही थी। होठों पर मुस्कान थी और प्रसन्नता के आँसू गालों पर ढलक रहे थे।

चम्पा ने रथ से नीचे पाँव रखा ही था कि सब दासियाँ अभिवादन को झुक गईं और रक्षा-दल ने सलामी दी और चम्पा दौड़ कर रूपमती से लिपट गई। प्रेम के आलिंगन में बँधी, दोनों आत्मविभोर-सी हो रही थीं।

रूपमती, चम्पा को साथ लिये, अपने उसी वैभव के साथ राजप्रासाद की ओर चल पड़ी कुछ देर वे दोनों मौन चलती रहीं। दोनों ही कुछ कहना चाह रही थीं, पर होंठ थे कि बँध-से गये। मुँह था कि खुलता नहीं। फिर झिझकते

ो—कल तुम्हें भी दिखाऊँगी।" यह कह कर रूपमती अनायास हँस पड़ी।
ा ने चलते-चलते उसे फिर गले से लगा लिया।

चम्पा—"रूपा ! मेरी प्यारी रानी। अब मैं प्रसन्न हूँ, अति प्रसन्न हूँ। मैं बधाई देती हूँ। मैं अपने उस किये की क्षमा चाहती हूँ, जो तुम्हारे स्वप्न यथार्थ' से दूर समझती थी। मैं भूल पर थी।"

रूपमती—(हँसते हुये) "नहीं चम्पा बहन ! ऐसी बात नहीं। तुमने मुझे भटकने नहीं दिया। मैं तो भाग्य की दासी हूँ, उसी की पुजारिन हूँ। वही जन्म-दाता है और वही मुझे मारने वाला।"

इधर-उधर की बातें करती हुई, दोनों, अमानी-गुलनार और दासियों के राजप्रासाद में पहुँच गईं।

२९

रूपमती के हर्षोल्लास और सुख-वैभव के दिन महीनों में और महीने वर्षों रिवर्तित हो रहे थे। राजा उस पर मोहित था और वह राजा की पुजारिन राज-शासन के सब कार्य उसके परामर्श से पूर्ण होते थे। राजा के संग पूरे राज्य का दौरा किया। चप्पा-चप्पा देखा। नये गढ़ बनवाये, पुरानों ारम्मत करवाई और सीमाओं पर नई मोर्चा-बन्दियाँ करवाईं। धर्म और ा के कार्यों में उसकी विशेष रुचि थी। युवा महाराज और महारानी ने का मन मोह रखा था। सब सुखी थे।

इन दिनों सम्राट अकबर अपने राज्य को बढ़ाने की चिन्ता में लगा था। ा के उन्माद ने उसका उत्साह दूना कर रखा था। बंगाल और रणथम्भौर

ार पाने के वाद, उसकी दृष्टि मालवा पर पड़ी ? मालवा . . ..
रयाँ होने लगीं। इस कार्य के लिए उसने अपने प्रसिद्ध, पाँच हज़ारी
ादुर खाँ को चुना, जो युद्ध-कला में निपुण था।

एक पहर वीत चुकी थी। रानी रूपमती अपने शयन-कक्ष में तकिये
गाये कुछ सोच रही थी। पास ही एक फ़ानूस प्रकाशमान था। सामने
र पत्रों का ढेर विखरा था। एक पत्र को वह ध्यान से पढ़ रही थी।
छ विचार आया कि रानी ने फ़िरोज़ को पुकारा। फ़िरोज़ तुरन्त
हुआ।

रोज—"आज्ञा महारानी।"

ी—"महाराज जव भी दरवार से उठें तो हमें तुरन्त सूचना दो।"

रोज़ अभिवादन करके चला गया और रानी दूसरे पत्र देखने लगी।
ड़ी देर पश्चात फ़िरोज़ ने दरवार समाप्त होने की सूचना दी। रानी पत्र
र उठी और महाराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी। राजा ने प्रवेश
ौर मुस्कुरा कर बोला—"क्षमा करना, रूपमती! वहुत देर हो गई।
सूचना के सम्वन्ध में विचार-विमर्श करने में वहुत समय लग गया।"

पमती—"तो क्या निर्णय हुआ ?"

जा—"अभी तो यह निश्चय हुआ है कि एक टुकड़ी सेना की, सीमा
-भाल के लिए तुरन्त भिजवा दी जाये, जो शत्रु की हल-चल पर कड़ी
े।"

पमती—(पत्र दिखाते हुए) "यह सूचना-पत्र अभी-अभी रणथम्वौर से
है। वहादुर खाँ के आधिपत्य में सेना तैयार हो रही है। अनुमान है
सप्ताह में ही आक्रमण हो जायेगा। इस स्थिति में किसी एक सरदार
ना की टुकड़ी के साथ सीमा पर भेज देना, मैं पर्याप्त नहीं समझती।"

राजा ने पत्र को वड़े ध्यान से पढ़ा और वड़ी देर तक सोचता रहा।

राजा—"अकवर ने सेनापति भी वड़ा वाँका चुना है। यह वही वहादुर
, जो अलीकुली खाँ सीस्तानी का भाई है। दोनों भाई वला के मनचले
ानीपत में हेमूं का निर्णय इन्हीं की तलवार ने किया था और अकवर के

राज्य की नींव रखी थी। इस सूचना को हम बड़ा महत्व देते हैं। वास्तव एक टुकड़ी सेना की पर्याप्त न होगी। हमें पूरी शक्ति से शत्रु की प्रतीक्षा कर चाहिए।"

रूपमती—"मेरा विचार है कि महाराज स्वयं सेना लेकर जायें। मैं एक दिन में सेना की भोजन-सामग्री, घायलों की मरहम पट्टी का प्रबन्ध औ बाकी हर प्रकार की आवश्यकता-पूर्ति का प्रबन्ध करके आप से अ मिलूंगी।

राजा—"रूपमती! तुम क्यों कष्ट उठाती हो। तुम यहीं रहो। यह कठि नाई झेलना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "महाराज के साथ कठिनाई झेलने में ए विशेष आनन्द है।"

राजा—(मुस्कुरा कर) "तुम फूल हो रूपमती! और फूल उद्यान में ही शोभा देता है।"

रूपमती—"महाराज! फूल की शोभा तो राजमुकुट पर ही है। व फूल जो केवल उद्यान में ही रहे, वह भी क्या फूल। मेरे विचार में उसके खिले रहने का कोई महत्व नहीं।"

राजा—(निरुत्तर होकर) "रूपमती! मुझे तुम से एक क्षण का वियोग भी असह्य है। किन्तु इससे भी अधिक असह्य है कि तुम मेरे संग, जंगलों-पर्वत में धूल छानो।"

रूपमती—महाराज! आप मुझे रोकने का अधिक प्रयत्न न करें। आपके चरणों से दूर रहकर, इन महलों में जंगलों से अधिक कष्ट होगा। यह मेरा निजी स्वार्थ है कि मैं महाराज के चरणों के समीप रहने की प्रार्थना कर

एकत्र की जाये। सीमा प्रांत के राज्यपालों के नाम आदेश लिखे ही रात तीव्रगामी ऊँटनियों द्वारा भिजवा दिये गये।

रानी के आदेशानुसार रात-भर दास-दासियों और ख्वाजा-सराओं को राजा की आवश्यकताओं की पूर्ति के सिवा और कोई कार्य न था। स्वयं राजा और रानी युद्ध के सामान का सूचीपत्र बनाने में व्यस्त रहे। वह रात पलक झपकने सी आँखों में कट गई। सेना के अधिकारियों ने रात के अँधेरे में सेना को नगर से बाहर पहुँचा दिया। अभी नगरवासी सो ही रहे थे कि राजा सेना के साथ कूच कर गया। किसी को कानों-कान खबर न हुई। यह कार्य इतनी सावधानी से इस कारण किया गया कि सम्भव है नगर में शत्रु के भी गुप्तचर हों।

बाजबहादुर इतनी शीघ्रता से निश्चत स्थान पर पहुँचा कि शत्रु की सेना अपने स्थान से हिलने भी न पाई। सीमा-प्रांत के सरदार एक-एक करके अपनी सेना और सामग्री के साथ आन मिले। पूरी सीमा पर सेना को यूं फैला दिया गया कि आने-जाने वाले यात्रियों को पता भी न चल सका। स्वयं राजा एक घने जंगल में डेरे डाल कर बैठ गया और चारों ओर गुप्तचरों का जाल फैला दिया।

रानी रूपमती ने दो ही दिन में सेना की आवश्यकता का सामान प्राप्त करके रात के अँधेरे में पीछे-पीछे भिजवा दिया।

यह सब कार्य इतना चुपचाप हुआ कि दुर्ग के बहुत से व्यक्तियों को भी राजा के जाने की सूचना न हुई। यहाँ तक कि गुलनार को भी इसका ज्ञान तब हुआ, जब वह दूसरी सवेरे रानी रूपमती की सेवा में उपस्थित हुई। राजा के यूं तुरन्त चले जाने पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और बोली—"वास्तव में राज्य करना बड़ा जोखिम का कार्य है।"

रूपमती हँस पड़ी और कहने लगी—"तुम्हें याद होगा गुलनार! मैंने एक बार कहा था कि वह सिर जिस पर राजमुकुट है सबसे अधिक बोझ उठाये

रूपमती—"मैं सोई ही कब हूँ ? महाराज भी रात भर तैयारियों में रहे और मैं भी उनकी सहायता करती रही।"

गुलनार—"तो फिर मुझे क्यों न बुलवा लिया, मैं भी कुछ से करती।"

रूपमती—(हँसते हुए) "मैंने 'सरकार' को इस कारण से न बुलवाया 'सेवक' अप्रसन्न होता।"

दोनों हँसने लगीं। गुलनार ने पूछा—"और अमानी को भी सूच न हुई ?"

रूपमती—"वह राजा की सेवा में उनके संग है। मैं भी परसों तक उन पास पहुँच जाऊँगी।"

गुलनार—"और मैं ?"

रूपमती—(हँसकर) "तुम दुर्ग-रक्षक की पत्नि हो। दुर्ग की मालिक हो, यहीं रहोगी।"

अभी यह बातें हो ही रहीं थी कि फ़िरोज़ भीतर आया और बोला—

"महारानी ! चिकित्सालयों का उच्च अधिकारी उपस्थित है।"

रानी—"बुलाओ !"

वह भीतर आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

रानी—"देखो ! पचास चिकित्सक, दो सौ शल्य चिकित्सक, दवाईय और मरहम-पट्टी का सामान तुरंत तैयार करो ! यह सब कुछ आज हं आधी रात को रवाना हो जायेगा और सावधान ! किसी को भी इसका ज्ञा न होने पाये।"

अधिकारी—"सरकार ! यह सामान और यह लोग किधर भिजवाे जायेंगे ?"

रानी—(त्यौरी पर बल डाल कर) "यह पूछना तुम्हारा काम नहीं जो

दिन भर गाड़ियों में भोजन सामग्री लदती रही और रात के अंधकार में चलने की आज्ञा की प्रतीक्षा की जाने लगी। रानी दिन भर इसी काम में व्यस्त रही और जब हर काम पूर्ण रूप से हो चुका, तो आधी रात गये काफले को सेना के एक रक्षक-दल के साथ जाने की आज्ञा देकर, पूरे एक दिन और एक रात के बाद, रानी ने बिस्तर से पीठ लगाई।

रानी के बहुत समझाने-बुझाने पर भी, गुलनार अपने घर न गई और रानी के शयन गृह में ही रही। सवेरे होते ही रानी फिर उठ बैठी और अपने जाने की तैयारियों में लग गई। दुर्ग की रक्षा के लिए आदेश दिये, सब मोर्चों, बुर्जों और तोपों का स्वयं निरीक्षण किया, नगर में हर आने-जाने वालों पर कड़ी दृष्टि रखने और हलचल गुप्त रखने की आज्ञा दी। सांझ ही से सैकड़ों जंगी हाथी तैयार हो गये और सरदार सेना के एक दल को लेकर दुर्ग में उपस्थित हो गया। सबने हथियार लगाये और रात का खाना राजसी लंगर से खाया।

इधर गुलनार, रानी रूपमती को हथियारों से सजा रही थी और ज़र्रीन कटार कमर में लगाये नंगी तलवार हाथ में लिये बाहर टहलता फिर रहा था।

गुलनार—"सरकार तो परसों जाने को कह रही थीं ?"

रानी—"हां, पहले तो यही विचार था किन्तु पूरा कार्य चूंकि निर्धारित समय से पहले ही हो गया है सो मैंने कल के स्थान पर आज ही जाने का निश्चय कर लिया है।"

रूपमती तैयार होकर गुलनार को साथ लिये बाहर निकली। ज़र्रीन ने सैनिक ढंग से अभिवादन किया।

रानी—(मुस्कुराते हुए देख कर) "तुम पर केवल दुर्ग की रक्षा ही नहीं बल्कि (गुलनार की ओर संकेत करके) इनकी रक्षा का भी भार है और इनकी सेवा एक सच्चे सेवक के समान होनी चाहिये।"

यद्यपि अमानी उनकी सेवा के लिये संग है, किन्तु उनके अकेलेपन का विचार मुझे सदा सताता है।"

गुलनार—(मुस्कुराते हुए) "सच कहती हैं महारानी ! हज़ार अमानी, हज़ार गुलनार मिलकर भी महाराज को वह सुख नहीं पहुँचा सकतीं, जो महारानी की एक दृष्टि, एक स्पर्श, एक मुस्कान पहुँचा सकती है।"

रूपमती गुलनार की ओर देखकर हँस पड़ी, और गुलनार भी हँसने लगी।

दोनों दुर्ग के फाटक पर पहुँच कर रुकीं। साथ की सेना और दुर्ग के रक्षक दल ने सलामी दी। हाथी बिठाये गये, रानी गुलनार से गले मिलकर सवार हुई, और हाथियों का काफ़ला रात के अन्धेरे में चल पड़ा। आठ पहर तक मारा-मार निरन्तर चलते हुए, अगली रात अपने लक्ष्य पर जा पहुँचा। रानी के आने की सूचना पाकर राजा स्वागत के लिए बाहर निकला तो रानी को अस्त्र-शस्त्र से सजा देखकर, मन मसोस कर रह गया। चाहता था कि उसे आलिङ्गन पाश में बाँध ले, किन्तु अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति ने उसे रुकने पर विवश कर दिया। मुस्कुराता हुआ बढ़ा, हाथों से सहारा देकर उसे सीढ़ी से उतारा और हाथों-हाथ अपने शिविर में ले गया। राजा की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। हँस रहा था और अपने हाथों से रानी के हथियार खोल रहा था।

राजा—(रूपमती को आलिङ्गन में लेते हुये) "रानी ने बाज़बहादुर पर बड़ी कृपा की।"

रूपमती—(हँसते हुए, चंचलता से) "निस्सन्देह, हमने बाज़बहादुर पर बहुत कृपा की।"

दोनों अनायास हँसने लगे। फिर भावी युद्ध के विषय में बातें होती रहीं और बड़ी रात गये तक सोये।

उधर अकबर के सेनापति बहादुर खाँ ने हलचल की। पड़ाव पर पड़ाव

वाज़बहादुर ने बहादुर ख़ां के रुकने को अपने लिए शुभ विचारते हुये, इस से लाभ उठाने का निर्णय किया। उसने देखा कि उसकी पूरी सेना एक ही स्थान पर एकत्र है फिर यह कि पड़ाव पड़ाव पर मारते चले आ रहे हैं। इतनी यात्रा से थके हुए अवश्य रात को असावधानी से विश्राम करेंगे। इसके अतिरिक्त उसे यह भी सन्तोष था कि शत्रु उसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ है। वरना वह यूं अंधाधुन्ध बढ़ता न चला आता।

साँझ को ज्यूं ही यह सूचना पहुँची, तुरन्त, सरदारों को परामर्श के लिये इकट्ठा किया और मिलकर यह निश्चय किया कि रात्रि-आक्रमण का इससे अच्छा अवसर मिलना कठिन है।

अधिक सेना के साथ रात्रि का हमला युद्ध के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होता इसलिये योजना बनी कि दो-दो हजार के दो टुकड़े विपरीत दिशाओं से शत्रु पर टूट पड़ें। वह भी ऐसे कि पहले एक-एक हज़ार की टुकड़ी दोनों ओर से आक्रमण करे और शेष एक-एक हज़ार पीछे सहायता को रहे। जब देखें कि युद्ध कुछ गर्म होने लगा है, तो एक साथ हमला करके टूट पड़ें। इसके लिए चार अनुभवी सरदार चुने गये, और स्वयं राजा, दूसरे सरदारों के साथ पाँच हज़ार सैनिकों का दल लेकर अन्तिम आक्रमण को तैयार बैठा।

रूपमती ने साथ चलने का आग्रह किया, परन्तु बाज़बहादुर न माना। चुपचाप योजनानुसार सेना आगे बढ़ी, दो कोस जाकर सीधा ऊपर को चढ़ना आरम्भ हुआ और अपने-अपने दांये बाँये को पलटी। इधर से बाज़बहादुर भी धीरे-धीरे सीधा बढ़ कर शत्रु की सेना के सामने पहुँच गया। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, तो पहले दल ने एक ओर से आक्रमण किया। एक खलबली-सी मच गई। हाय-हाय की पुकार और वीरों की जय-जयकार से रात के सन्नाटे में जंगल गूंज उठा। बाज़बहादुर धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला जा रहा था कि दूसरे दल के ताजा आक्रमण की ध्वनि उठी।

बाजबहादुर अपनी सेना के साथ इतना समीप पहुँच गया था कि आवाज़ें स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। यहां आकर वह रुक गया और प्रतीक्षा करने लगा कि दूसरे दोनों दल भी दायें-बायें से शत्रु पर आ गिरें।

बहादुर खाँ तलवार का धनी था। जितना भी हो सका बिखरी हुई सेना को एकत्र किया और घमासान युद्ध छेड़ दिया। इतने में बाज़बहादुर के दूसरे दोनों दल भी जय-जयकार करते हुए विपरीत दिशाओं से शत्रु पर टूटकर गिरे। इस ताजा आक्रमण से शत्रु की सेना का वह भाग भी, जिसने सिमट कर लड़ाई आरम्भ कर दी थी, फिर बिखर गया। एक भाग-दौड़ मच गई। भागती हुई सेना के घोड़ों की टापें, हाथियों की चिंघाड़ें और ऊँटों की बिलबिलाहट से यह प्रगट हो रहा था कि शत्रु-सेना के पाँव उखड़ रहे हैं।

बाज़बहादुर ने आक्रमण का आदेश दिया। सेना ने घोड़ों को एड़ी लगाई और क्षण-भर में जय-जयकार लगाते हुए शत्रु की सेना से टकरा कर उसे भालों पर रख लिया। शत्रु की सेना इस आक्रमण का सामना न कर सकी। बहादुर खाँ ने बहुत बनाना चाहा किन्तु बिगड़ी हुई लड़ाई न बन सकी। हज़ारों घायल हुए, हज़ारों भागने की धकापेल में कुचले गये, हज़ारों तलवारों की धार पर ...ए और जो बड़ी कठिनता से बच निकले वह जंगलों में भाग गये।

सैंकड़ों हाथी, घोड़े, ऊँट, हथियार और दूसरा लड़ाई का सामान हाथ लगा, ...तने ही शत्रु बंदी बनाकर लाये गये। सवेरे होते तक रण-स्थल तो शत्रु से ...फ हो गया, किन्तु हर ओर लहू की नदियाँ बह रही थीं, घायलों की चीख-पुकार से कलेजा फटा जाता था।

रूपमती के पास क्षण-क्षण की सूचनायें पहुँच रही थीं। घायलों को उठाने के लिए गाड़ियाँ और चिकित्सा का सामान भिजवाया और हथियार लगा कर स्वयं भी घोड़े पर सवार होकर रण-स्थल पर जा पहुँची।

सूर्य पूरा निकल चुका था। दूर ही से, राजा लहू से भरपूर तलवार गले में लटकाये एक टेकरी पर खड़ा दिखाई दिया। नीचे मैदान लाशों से पटा हुआ था। स्वयं राजा के वस्त्र लहू में सने हुए थे। रूपमती शिष्टता के राजसी नियमों को छोड़कर घोड़े से कूदी और दौड़कर राजा से लिपट गई। राजा हँसने लगा और उसकी बाँहें भी अनायास रूपमती की कमर के गिर्द कस गईं।

राजा—(हँसते हुए) "हम यही उपहार महारानी को लौटाते हैं।" यह कहते हुए अपनी लहू में सनी हुई तलवार रूपमती के गले में डाल दी। रूपमती सादर झुक गई और दोनों हँसने लगे।

घायलों को उठाने वाली गाड़ियाँ पहुँच गई। राजा और रानी टेकरी से उतरे और घायलों को उठवाने के कार्य में व्यस्त हो गये। उन्हें अपने हाथों से सहारा दे कर उठवा रहे थे। साथ ही वीरोक्तियों द्वारा उनका साहस बढ़ा रहे थे। शत्रु ऐसी खलबली में भागा था कि अपने घायलों को भी न उठवा सका। उनको भी उठवाया फिर मृत: सैनिकों का अन्तिम-संस्कार किया और कहीं रात पड़े अपने डेरों को वापस लौटे।

सेना भी थकी हुई थी। निरन्तर परिश्रम से राजा-रानी के भी अंग-अंग दुख रहे थे। अंग-रक्षकों को सावधान करके उन्होंने रात होने ही विश्राम के लिए पाँव फैला दिए और निन्द्रा-मग्न हो गये।

प्रात: उठकर पहले राजा और रानी ने घायलों को देखा, उनकी प्रशंसा की और उन्हें साहस बँधाया। फिर लूट के माल का सूचीपत्र बनवाया। जितना धन प्राप्त हुआ था, वह सिपाहियों, सरदारों तथा अन्य सेवकों को यथा-सन्मान बाँट दिया। घायलों को इसके अतिरिक्त पुरस्कार भी मिला।

इस विजय की सूचना राजदुर्ग में पहुँचा दी गई, किन्तु सेना और स्वयं राजा और रानी उस समय तक वहीं ठहरे रहे जब तक घायलों की दशा यात्रा के योग्य न हो गई और चारों ओर से गुप्तचरों ने यह सूचना न दे दी कि अब किसी आक्रमण का भय नहीं।

३०

इस भव्य-विजय के पश्चात् राजा और रानी का लौटना प्रजा के लिये किसी महोत्सव से कम न था। राजदुर्ग, राजप्रासाद और नगर भर में एक विचित्र चहल-पहल थी। जो एक उदासी कुछ दिनों के लिये छाई थी वह यूँ दूर हुई मानो घटाटोप अन्धकार के पश्चात् सूर्य निकला हो।

आज रात्रि में संगीत और नृत्य की सभा होने वाली थी, जिसकी प्रबन्धक गुलनार थी। राजप्रासाद साँझ से ही विविध भाँति से प्रकाशित हो रहा था। हुई गायिकायें और नर्तकियाँ आमन्त्रित थीं।

रानी रूपमती रेशम के श्वेत वस्त्रों में सुसज्जित, जड़ाऊ गहने पहने, सिर मुकुट धारण किये सोने की कुर्सी पर बैठी थी। उसके घने और लम्बे बाल उसके कंधों पर बिखरे थे, एक दासी खड़ी कंघे से समेट रही थी। राजा थ वाले शयन-कक्ष में रेशमी-महीन पर्दे के पीछे खड़ा उसके सौंदर्य को निहार रहा था। दासी कंघी करके कमरे से निकली, तो राजा ने प्रवेश किया।

रानी दर्पण के सन्मुख बैठी थी। राजा धीरे से बढ़ते हुए उसके समीप आया और कंधे पर हाथ रखते बोला—

"उसने शानों पे जुल्फ़ बरहम की,
ख़ैर, या रब!—नज़ामे आलम की।"

रानी हँसते हुये सम्मान के लिये खड़ी हो गई। राजा ने उसे आलिङ्गन-पाश में बाँध लिया। दोनों पर एक उन्माद-सा छा गया। राजा ने उसे और भींच लिया और उसका रेशम से भी कोमल शरीर उसके वक्ष से यूँ आ लगा

राजा—"प्रिये ! तैयार हो गई ?"

रूपमती—(हँसते हुये) "जी महाराज !"

राजा—"देखो रूपमती ! यह 'शब्द' हर समय अच्छा नहीं लगता ।"

रूपमती—"कौन-सा 'शब्द' महाराज ।"

राजा—"यही 'महाराज' का । कभी इसे भुला भी दिया करो । मैं सुन सुनते ऊब गया हूँ ।"

रूपमती—आप मेरे स्वामी हैं । मेरे महाराज हैं, तो इसे भुला कैसे दूं !

राजा—"रूपमती ! तुम्हें याद होगा, जब पहली वार मैंने तुम्हें अप बनाने की इच्छा प्रगट की थी तो राजा बन कर आज्ञा न दी थी, बल्कि बाज बहादुर बन के अनुनय किया था । तुम मुझे बस बाजबहादुर ही समझो । य 'आप' और 'महाराज' का प्रयोग केवल विशेष अवसर के लिये ही रहने दो ।

रूपमती ने उसके गले में बाँहें डाल दीं और हंसते हुये बोली—"अच्छा, ह बताओ बाज़बहादुर ! तुम्हें बाजबहादुर समझने का कौन-सा अवसर है ?"

बाज़बहादुर—(उसे सीने से लगा कर मुस्कुराते हुए) "जब मैं और तु अकेले हों ।"

रूपमती—"तुम्हें अपने सामने देखकर, अपने समीप पाकर मैं ऐसी खो
जाती हूँ कि मुझे किसी कष्ट का भान ही नहीं रहता, वलिक आनन्द ही आनन्द
अनुभव होता है।"

बाज़बहादुर—"रूपमती ! क्या स्त्री भी पुरुष के लिए वही भावना रखती
है, जो पुरुष उसके लिए रखता है।

रूपमती—"स्त्री और पुरुष की भावनाओं की तुलना ही नहीं। वास्तव में
इन भावनाओं की अधिकारणी तो केवल स्त्री ही है। किन्तु मैं जानती हूँ कि
तुम्हें इसका विश्वास न आयेगा। काश ! क्षण-भर के लिए तुम रूपमती बन
सकते और मैं बाज़बहादुर बन सकती।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। बाहर पाँव की आहट के साथ पर्दा हिला
दोनों अलग हो गये और गुलनार भीतर आई।

गुलनार—(अभिवादन में झुककर) "महाराज ! सभा तैयार है।"

राजा—(मुस्कुरा कर रूपमती की ओर देखते हुये) "यह तुम्हारी महारानी
कह रही हैं कि हम तो गोद में चलेंगे।"

बाज़बहादुर और रूपमती हँसने लगे और गुलनार ने आँखें नीची कर लीं।
सभा में पहुँचे। दासियें और गायिकायें अभिवादन को झुकीं और राजा-रानी
दोनों सामने गाव तकिए से पीठ लगा कर बैठ गये। संगीत छिड़ गया और
नर्तकियों ने नृत्य आरम्भ किया।

सौंदर्य की सज-धज, नाचने वालियों के लहँगों की तड़क-भड़क, तबले
की गमक, पाँव की धमक और घुंधरुओं की छनक से एक समाँ बँध गया।
राजा और रानी मुस्कुराहटों से प्रशंसा कर रहे थे। आधी रात तक यही रंग
बरसता रहा।

३१

अकवर को अपने प्रसिद्ध सरदार की अपमान-जनक पराजय का बहुत दुख हुआ, बड़ा तिलमिलाया किन्तु दूसरा आक्रमण सम्भव न था। वैरम खाँ और दूसरे सरदारों में कुछ तनाव के कारण टेढ़ी-सी समस्या उत्पन्न हो गई थी। स्वयं सम्राट् के मन में वैरमखाँ के विरुद्ध कई शंकाएँ जड़ पकड़ती जा रही थीं। यह स्थिति वैरम खाँ के लिये राजा से अधिक चिंताजनक थी और वह ऐसे अवसर की खोज में था जिसमे राजा के मन से अपने प्रति शंका को दूर कर सके। इस आशय से उसने अपने व्यय से मालवा पर आक्रमण की, सम्राट् से आज्ञा माँगी। सम्राट ने वड़ी प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया और कई सरदारों को इसमें सहयोग देने के लिए उसकी आज्ञा में कर दिया।

वैरम खाँ बड़ा अनुभवी सेनापति और चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने गुप्त जंगी तैयारियों के साथ-साथ मालवा में गुप्तचरों का जाल फैला दिया और बाजबहादुर के सरदारों को घूस तथा पुरस्कारों के लालच द्वारा तोड़ने का यत्न आरम्भ कर किया।

बाजबहादुर भी चौकन्ना था। उसे यह सूचनायें मिलते देर न लगी और वह भी पूरे मन से खानखाना का सामना करने की तैयारियाँ करने लगा। सरदारों से परामर्श किये गये, मोरचा बन्दियों को दृढ़ बनाया गया और चारों ओर सीमा पर सेना फैला दी गई।

खानखाना के सब प्रयत्न, बाजबहादुर के सरदारों को तोड़ने के, असफल रहे और अब खुले आक्रमण के अतिरिक्त उसके पास कोई उपाय न था। सेना लेकर बढ़ा किन्तु अनमना सा, क्योंकि अपने नीचे वाले सरदारों पर उसे विश्वास न था। वह यह न चाहते थे कि सम्राट् की दृष्टि में उसका गिरा हुआ मान

फिर बढ़े।

बाज़बहादुर को यह सूचनायें निरन्तर मिल रही थीं और वह राजधानी में ही में बैठा स्थिति को देख रहा था। दूसरे सरदारों को उचित स्थानों पर नियुक्त करके स्वयं खानखाना के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा।

मालवा के क्षेत्र में आकर खानखाना ने जहाँ भी पाँव बढ़ाने चाहे वहीं उसे मुँह की खानी पड़ी। अकबरी सेना कहीं भी डटकर न टिक सकी, ऐसी छोटी मोटी कई झड़पों के पश्चात् वह जान गया कि नीचे वाले सरदार उसे सहयोग नहीं देना चाहते, सो इस चढ़ाई को व्यर्थ जानकर वापस लौट गया।

यद्यपि बाज़बहादुर को अबकी अधिक कष्ट न उठाना पड़ा और उसने बड़ी सरलता से शत्रु को अपनी सीमा से बाहर निकाल बाहर किया। किन्तु वह सन्तुष्ट न था। वह जानता था कि अकबर चुप न बैठा रहेगा और कभी न कभी उसे भयंकर युद्ध का सामना करना ही पड़ेगा।

कुछ महीने बीत जाने पर बाज़बहादुर ने अकबर को शान्त करने के लिये उसके दरबार में एक दूत भी भेजा, किन्तु सम्राट् पर इसका कोई प्रभाव न हुआ। बलवान, निर्बल की मित्रता का इच्छुक नहीं होता उसे उसकी दासता चाहिए।

घटनायें होती रहीं और समय बीतता रहा। इस बीच में बैरम खाँ का काँटा भी निकल गया था। अब अकबर ने अपना पूरा ध्यान मालवा की ओर लगा दिया और स्वयं आक्रमण का प्रबन्ध करने लगा। पिछली दो बार की पराजय से उसने अनुमान लगा लिया था कि बाज़बहादुर न केवल सावधान, बुद्धिमान और मनचला है, बल्कि उसके सरदार और उसकी प्रजा भी राज्य-भक्त है। इस कार्य के लिए उसने दो विश्वासनीय अमीरों ऊधमखाँ और मुल्ला पीर मुहम्मद को चुना।

ऊधमखाँ, अकबर की धाय माँ—माहम का बेटा और उसका दूध-भाई था। वह बुद्धिहीन, अशिक्षित, संकीर्ण हृदय और वासना-प्रिय व्यक्ति था। ऐतिहासिकों ने उसे 'राँड का साँड' कहा है। मुल्ला पीर मुहम्मद ज्ञानी, विद्वान

र मृदुभाषी व्यक्ति था। कुछ दिनों वह अकबर का अध्यापक भी रहा था, न्तु बड़ा लालची और कठोर हृदय था। ऐतिहासिकों ने उसे कसाई के नाम से बोधित किया है।

३२

रजनी के घने केश कटि तक पहुँच चुके थे, चन्द्रमा अपने पूरे यौवन पर काशमान था, और उसकी रुपहली चादर मांडू के दुर्ग पर बिछी हुई थीं।

बाजबहादुर और रूपमती राज्य-उद्यान में टहलते हुए अपने शयन-कक्ष में वापस लौटे। वे चिन्तित और व्यग्र दीख पड़ते थे। दोनों गाव-तकियों का सहारा लेकर लेट गये। बाजबहादुर ने अपनी बाँह रूपमती की गर्दन में डाल दी, और वह खिंची हुई उससे ऐसे आ मिली, जैसे सुई चुम्बक से। बाजबहादुर ने दूसरा हाथ उसकी कटि में डाल कर उसे अपने वक्ष से लगा लिया। बहुत देर तक दोनों ऐसे ही पड़े रहे। फिर बाजबहादुर ने मौन भंग किया।

बाजबहादुर—(ठंडी सांस भर कर) "रूपमती ! मुझे कभी न भूलना !"

रूपमती तड़पकर उठ बैठी और बाजबहादुर पर दृष्टि जमा दी। दोनों हाथों से हृदय पकड़ कर तेज-तेज सांस लेने लगी।

रूपमती—"यह क्या कहा तुमने ?"

बाजबहादुर—"यह कहता हूँ कि देखना यदि कभी ऐसा समय आ जाये, कि हमें एक दूसरे से अलग होना पड़े तो मुझे भूलना मत।"

रूपमती की आंखों में आंसू तैरने लगे और कपोलों पर ढलक आये। व्याकुल होकर उसके वक्ष से चिमट गई और कांपते स्वर से बोली—"ऐसा

कहो बाज़बहादुर ! मेरा हृदय फट जायेगा। मैं मर जाऊँगी बाज़बहादुर !" और यह कहकर सिसकियाँ भर कर रोने लगी।

बाज़बहादुर—"यह क्या करने लगी रूपमती ! मुझे कायर मत बनाओ ! मैं वीर हूँ और मेरी प्रेयसी को भी वीराङ्गना ही होना चाहिये। मेरा सामना बड़े बलशाली और कड़े शत्रु से है। यदि तुमने साथ न दिया तो मेरा कार्य बड़ा कठिन हो जायेगा।"

रूपमती—(आँखों में आँखें डालकर) "मैं विश्वास दिलाती हूँ कि तुम्हारी पत्नी कभी कायर न होगी। मैं प्रत्येक कठिनाई झेल सकती हूँ। तुम्हारे लिये प्राणों पर खेल सकती हूँ, किन्तु केवल तुम्हारा वियोग नहीं सहन कर सकती, यही मेरी निर्बलता है। मैं इसलिये रोती हूँ कि तुमने यह बात कही क्यूँ ?"

बाज़बहादुर—(उसे प्यार से सहला कर) "मुझे क्षमा कर दो। मेरे मुँह से निकल गई। आह रूपमती ! राजा होना सब से बड़ा दुख है। काश। हम तुम जोगी-जोगन होते।"

रूपमती—"सच कहती हूँ कि तुम्हारे राजा होने पर मैं मन से कभी प्रसन्न न थी। मुझे राज की तनिक भी अभिलाषा नहीं। सब छोड़ कर निकल चलो। मैं निर्धनता में भी तुम्हें अपना राजा ही समझूँगी। अब भी तुम्हारी भिखारन हूँ और भविष्य में भी तुम्हारी भिखारन ही रहूँगी।"

बाज़बहादुर—(हँस कर) "तुमने यह तो कह दिया कि छोड़ कर चल निकलो। किन्तु यह न सोचा कि अपनी प्रिय प्रजा को बाहुबल होते भी चील-कव्वों पर क्यों कर छोड़ दूं।"

रूपमती—"हाँ, इसीलिये तो रोती हूँ मेरे राजा ! कि जब तुम प्रजा को चील-कव्वों पर नहीं छोड़ सकते तो रूपमती से ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है कि उसे छोड़ने का विचार है ? क्या रूपमती तुम्हारी प्रजा नहीं ? क्या उसकी राज-भक्ति पर तुम्हें शंका है ?"

बाज़बहादुर—(हँस कर) "तुम मेरी बात को समझी नहीं। मेरा आशय यह था कि अकबर की सेना बाढ़ के समान बढ़ी चली आ रही है। देश-भक्त सरदार अपने स्थानों पर पहुँच चुके हैं और मुझे भी इन्हीं के कन्धे से कन्धा

। कर रण-भूमि में पहुँचना है। तुम्हें विवशतः यहीं रहना होगा। मुझे
ारा वियोग सहना पड़ेगा, जो मेरे लिये अत्याधिक कठिन है, पर क्या करूँ?
: अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं।"

रूपमती—"यही तो मैं पूछती हूँ कि तुमने मुझे यहाँ रहने पर विवश क्यूँ
झ लिया?"

बाजबहादुर—"तो क्या तुम्हारा विचार मेरे साथ रण-स्थल में रहने
है?"

रूपमती—"हाँ! न केवल यह कि रण-स्थल में तुम्हारे साथ रहूँगी, बल्कि
कि तलवार पकड़ कर मैं लड़ूंगी भी।"

बाजबहादुर—(हँसकर) "तुम्हारा कोमल शरीर और यह सुकुमार हाथ
ृति ने इस काम के लिये नहीं बनवाये।"

रूपमती—"मैं अपनी शारीरिक निर्बलता को स्वीकार करती हूँ। किन्तु
म पर न्योछावर होना चाहती हूँ। यही मेरे लिये सबसे बड़ा सुख है, सम्मान

बाज़बहादुर—(मुस्कुरा कर) "रूपमती ! अभी तो तुमने कहा था कि तु मेरे राजा होने पर मन से कभी प्रसन्न न थीं और मुझे राज-पाट त्यागने परामर्श दे रही थीं। अब इससे क्यों पलटती हो ?"

रूपमती—"अभी तुमने भी तो कहा था कि दुनिया में राजा होने से ब कर कोई दुख नहीं और कहा था, काश हम तुम जोगी-जोगन होते।"

बाज़बहादुर—"मैंने सच कहा था और अब भी यही कहता हूँ।"

रूपमती—"मैंने भी सच कहा था किन्तु अब यह नहीं कहती कि राज-पा छोड़ दो।"

बाज़बहादुर—(मुस्कुराकर) "क्यों अब इतनी सी देर में क्या अन्तर प गया ?"

रूपमती—"बड़ा अन्तर पड़ गया।"

बाज़बहादुर—"वही तो पूछता हूँ।"

रूपमती—"मैं जानती हूँ तुम्हें अपने कर्तव्य-पालन का पूरा भास है औ ऐसे संकट में राजा का कर्त्तव्य क्या होता है, और तुमसे बढ़कर यह कौ जानता है ? मैं इसे छोड़ने का परामर्श कभी नहीं दे सकती। हाँ, इतना अवश्य कहती हूँ कि अपने सरदारों तथा अधिकारियों के सम्बन्ध में अवश्य सन्तोष कर लो कि क्या वह अन्त तक सच्चे मन से तुम्हारा साथ देंगे। यदि उनकी सच्चाई में तनिक भी शंका हो तो अकेले अपने आप को इस संकट में मत डालो। राजा होना कोई इतना बड़ा सुख नहीं। वास्तविक सुख तो मन की शान्ति ही है और कुछ नहीं।"

बाज़बहादुर—"मैंने सरदारों और दूसरे उच्च अधिकारियों से पहले ही पूछ लिया है और मुझे पूरा सन्तोष है। वह अकबर की दासता स्वीकार करने कदापि सहमत नहीं।"

रूपमती—"बस, फिर सब ठीक है, तुम्हें अपने और अपने सरदारों निर्णय पर दृढ़ रहना चाहिए।"

बाज़बहादुर—(हँसकर) "अच्छा, भला यह तो बताओ ! यदि मुझे रा

बाज़बहादुर—(हँसकर) "कैसी बातें करने लगी हो रूपमती।"

रूपमती—(हँसकर) "क्यों ? क्या मुझमें तुम्हारी दासियों जैसा भी सेवा-भाव नहीं ?"

दोनों हँसने लगे। बाज़बहादुर उठा और रूपमती की कमर में हाथ डा शयन-गृह में चला गया।

भर युद्ध की योजनाओं में व्यस्त रहा और रानी रूपमती अपने लिए, साथ ले जाने वाली आवश्यकता की वस्तुएँ सँभालती रही।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर देखते हुए) "अबके युद्ध कुछ बेढब है। देखना चाहिए तुम से कब मिलना हो। मुझे भूलना नहीं गुलनार।"

गुलनार यह सुनकर मुर्झा सी गई और भर्राये स्वर में बोली—"धिक्कार हो मुझ पर यदि एक क्षण भी मैं अपने राजा और रानी की शुभ-कामनाओं से दूर हटूँ। मेरी तो हार्दिक-कामना थी कि आप मुझे भी संग ले चलतीं।"

रूपमती—"नहीं गुलनार ! मैं तुम्हें संग ले जाना नहीं चाहती और मैं इस युद्ध में किसी को भी साथ ले जाने पर सहमत न थी किन्तु महाराज की आज्ञा पर अमानी और दो एक और दासियों को साथ रखने पर विवश हो गई

गुलनार—"मेरी महारानी ! मेरी चिन्ताओं का कारण केवल तुम्हारा विचार है। मेरा अपना क्या है ? मैं तो तुच्छ दासी हूँ। मुझे जाने की इच्छा है तो तुम्हारी और महाराज की छाया तले है, वरना नहीं। कदापि नहीं।"

रूपमती ने उसके गले में बाँहें डाल दीं और उसकी आँखों में आँखें डालकर बोली—"तुमने मेरी चिन्ताओं का अनुमान कैसे लगा लिया।"

गुलनार—"हो सकता है रूपा ! मेरा अनुमान तुम्हारी चिन्ताओं के संबंध में ठीक न हो, किन्तु मैं देख रही हूँ कि तुम व्यग्र अवश्य हो।"

रूपमती—(हँसकर) "हाँ, मैं व्यग्र अवश्य हूँ और इसी कारण यदि तुम मुझे कुछ चिन्तित भी समझ लो तो कुछ झूठ नहीं, किन्तु मैं चूंकि सुध में हूँ, इसलिये कहती हूं कि चिन्तित नहीं हूँ।"

गुलनार—"सुनती हूँ कि अकबर ने इस बार बड़ी विशाल सेना भेजी है जो संख्या में महाराज की सेना से बहुत अधिक है ?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "हाँ, यह सत्य है किन्तु मेरी चिंता का कारण यह नहीं।"

गुलनार—"फिर और क्या कारण है ?"

रूपमती सोचने लगी और उसके मुख पर कई उतार चढ़ाव उत्पन्न हुए।

तैयारियों में दिन बीत गया। साँझ से पहले दुर्ग के मैदान में सहस्त्रों हाथी लड़ाई के हथियारों से सजे एकत्र हो गये। दिन छिपते ही राजा तथा रानी शस्त्रों से सुसज्जित राज-महल से निकले। दास-दासियों और ख्वाजा-सरा पीछे-पीछे चले आ रहे थे। सेना ने सावधान होकर सलामी दी। हाथियों को बिठाकर सीढ़ियाँ लटका दीं और राजा बढ़ कर सीढ़ी पर चढ़ गया। फिर झुककर रानी की ओर हाथ बढ़ाया। रानी ने गुलनार से गले मिलकर सीढ़ी पर पाँव रख और राजा के हाथ के सहारे ऊपर चढ़ गई।

३४

आरम्भ में बाज़बहादुर की सेना टुकड़ियों में बँट कर कई स्थानों पर नियुक्त थी क्योंकि यह पता न था कि शत्रु किधर झुकेगा। किन्तु जब सूचना मिली कि शत्रु सारङ्गपुर की ओर बढ़ रहा है, तो वह सेना को समेटकर वहीं ले आया। यद्यपि बाज़बहादुर पूरी तैयारी से रण में उतरा था, किन्तु अकबर की सेना, हथियारों तथा संख्या में कहीं बढ़-चढ़ कर थी। ऐसी स्थिति में आक्रमण की पहल करना आत्महत्या के समान था। इसलिए दूसरी ओर से आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा।

दोनों सेनायें, एक दूसरे के सामने कुछ अन्तर तक रुक गईं। दोनों पक्ष सावधान और चौकन्ने थे और युद्ध के लिए उचित अवसर की खोज में थे। कई दिन और कई रातें यूँ ही बीत गईं। सेना आठों पहर सशस्त्र, कटिबद्ध रही।

यद्यपि यह समय देखने से तो शान्ति से बीत रहा था, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति समझता था कि यह अस्थायी शान्ति एक भीषण आंधी को छिपाये हुये है।

रात्रि दो भाग बीत चुकी थी कि गुप्तचरों ने सूचना दी, कि शत्रु की सेना दो भाग विपरीत दिशाओं से बढ़ रहे हैं। रूपमती और बाज़बहादुर अपने विर में सो रहे थे, तुरन्त उठे और शीघ्र शस्त्रों से अपने को लैस करने लगे। थयों पर सवार होकर रण में जा पहुँचे। अभी पौ फटी ही थी कि शत्रु ने मने की ओर से गोलाबारी और तीरों की बौछार में आगे बढ़ना आरम्भ या। इधर से भी उसका उत्तर दिया जाने लगा। बाजबहादुर और रूपमती हाथी पर बैठे तीर पर तीर छोड़ रहे थे। जंगल गूंज रहा था, धरती दहल ी थी। सारा वातावरण धुआँधार हो रहा था। शत्रु बराबर बढ़ता चला आ ा था। जब कुछ सौ गज़ का अंतर रह गया तो सहसा घोड़ों को एड़ लगा प के गोले के समान दनदनाता हुआ आ टकराया। बाज़बहादुर की सेना ने । टक्कर को बड़ी वीरता से भालों से रोका, और दोनों पक्ष तलवारें लेकर थमगुथा हो गये।

दिन भर का उजाला क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता जा रहा था और युद्ध भी तीव्र ता जा रहा था। बाज़बहादुर अपनी सेना-दल के केन्द्र में हाथी पर सवार ड़ाई का रंग देख रहा था। हर ओर लहू के फ़व्वारे उछल रहे थे। युवा वीरों ी ललकार, तलवारों की झन्कार, और घायलों की चीख-पुकार से हृदय हिले ा रहे थे। ऐसे ही लोहे से लोहा टकराते सूर्य सर पर आ गया। यद्यपि युद्ध भी तक कुछ तुला हुआ था, किन्तु शत्रु की सेना की अधिक संख्या प्रति-क्षण पना प्रभाव उत्पन्न कर रही थी। रेले पर रेला आ-आकर टकरा रहा था।

सहसा, केन्द्र के पीछे दायें और बायें एक आँधी-सी उठती दिखाई दी। ाजबहादुर समझ गया कि यह शत्रु की सेना के वह भाग हैं, जो रात में अलग

लोहे की टोपी रखे हाथी से नीचे उतरती दिखाई दी। झपट कर उल्टा बोला—"क्यूँ रूपमती !"

रूपमती—"मैं साथ रहूँगी" और यह कहकर उसने सन्न से तलवार म्यान ख़ींच ली।

वाज़बहादुर ने ध्यान पूर्वक उसकी ओर देखा। चुपचाप दृष्टि जमाये खड़ा रहा था कि आँखों में आंसू तैर आये।

अकबर की आक्रमणकारी सेना भी इस नई आने वाली सहायता को देख। थी, जो बगटुट घोड़े उड़ाये चली आ रही थी। शत्रु का आक्रमण और तीव्र हो गया। तीरों की बौछार बढ़ गई, तोपों के गोले दनादन केन्द्र पर ने लगे और सारा केन्द्र धुएँ और धूल की चादर में लिपट गया।

वाज़बहादुर—"प्राणप्रिये ! तुम यहाँ से चली जाओ।"

रूपमती—"तुम पर प्राण न्यौछावर करने का ऐसा अवसर फिर न गा।"

वाज़बहादुर—"रूपमती, मैं विनती करता हूँ कि तुम चली जाओ। देखो सिर पर आ पहुँचा, मुझे विदा करो।"

रूपमती रो पड़ी और व्याकुल होकर वाज़बहादुर से लिपट गई और बोली—ापि नहीं, कदापि नहीं, मेरे राजा ! मेरा निश्चय अटल है।"

रूपमती ने भी अपने लिए घोड़ा लाने की आज्ञा दी। वाज़बहादुर विवश गया। बढ़ कर उसे वक्ष में लगा लिया और उसके होठों को चूमा, फिर उसके घोड़े की रासें थाम कर खड़ा हो गया और स्वयं उसे सहारा देकर र किया।

पास खड़े हुए अधिकारियों और सरदारों की आँखें यह दृश्य देखकर सजल गई। शत्रु की नई सेना आकर टकराई और साथ के साथ हाथियों की यों पर फेंके हुए गोलों से आग का मेह बरसने लगा।

वाजबहादुर और रूपमती इधर से उधर घोड़े उड़ाते फिर रहे थे और बढ़-कर तलवारें मार रहे थे। दिन ढलने तक यही हाल रहा और मृतकों के लगते गये। वाजबहादुर और रूपमती अलग-अलग दो दलों से घिर गये।

रूपमती चोट पर चोट खा रही थी और लहू की धारों से पूरे वस्त्र लाल हो रहे थे। घावों से निढाल होकर घोड़े पर ही डगमगाने लगी। जब तक सुध रही तब तक सँभलती रही। अन्त में बेसुध होकर लाशों के ढेर पर घोड़े से गिर पड़ी।

बाज़बहादुर कई बार घेरे से निकल कर बाहर आया। रूपमती को देखने के लिये चारों ओर घोड़े को बचाता निकल जाता, किन्तु वह कहीं दिखाई न दी। यहाँ तक कि केन्द्र टूट गया और सेना बिखर गई।

बाज़बहादुर ने जब देखा कि रंग बिल्कुल बिगड़ चुका है और पूर्ण पराजय हो चुकी है तो रण से घोड़ा पलटाया और निकल गया।

तीसरा—"शीघ्र उठाओ भाई ! कदाचित बच ही जाये। ऐसी सुन्दरियों
से संसार खाली नहीं होना चाहिए।"

सब ने मिल कर बड़ी सावधानी से उठाया। तलवार अब तक उसकी
ल मुट्ठी में थी। एक ने मुट्ठी खोलकर तलवार छुड़ाई और गाड़ी में डाल
शीघ्र ही चल दिये।

घाव, यद्यपि बहुत लगे थे, किन्तु घातक कोई न था। राज-वैद्य उसे सुध
लाने का उपाय करने लगे अमानी और दूसरी बन्दी दासियों को बुला कर
ने पर ज्ञात हुआ कि वह स्वयं महारानी और मालवा के महाराज
प्रेमिका रूपमती है। सब चकित रह गये, और उसकी वीरता की प्रशंसा
लगे।

ऊधमखाँ का एक विश्वासी दास, चुग़रबेग़ भी वहीं उपस्थित था। तुरन्त,
हुआ ऊधमखाँ के शिविर में जा पहुँचा,

उधम खाँ (प्रसन्न होकर) "कहो चुग़रबेग, कितनी लूट हाथ आई।

चुग़रबेग़—"सरकार ! हाथियों-घोड़ों और दूसरे सामान का क्या कहना,
ऐसा अनमोल रत्न हाथ भी लगा है, जिससे स्वयं सम्राट अकबर का कोष
ख़ाली है।"

ऊधमखाँ—(हँसकर) "वह कैसा रत्न है ?"

चुग़रबेग़—"हुज़ूर ! वह मालवा के महाराज की महारानी रूपमती है।
कहूँ घावों से चूर होकर भी तलवार पकड़े लड़ रही थी। दास ने प्राणों पर
कर उसे वन्दी बनाया है।"

ऊधमखाँ—(प्रसन्न होकर) "धन्य हो चुग़रबेग़ ! तुम्हारी इस सेवा का उस
, मुँह माँगा पुरस्कार मिलेगा, जब ऊधमखाँ मालवा का राजा होगा और
ती उसकी रानी ! अच्छा, उसे हमारे सामने लाओ ?"

चुग़रबेग़—"हजूर इस समय वह बेसुध है राजवैद्य उसे सुध लाने का प्रयत्न
रहे हैं।"

जायेगी।"

ऊधमखाँ—"देखो हमारी आज्ञा पहुँचा दो कि उसकी चिकित्सा में कोई त्रुटि न रहे और उसके आराम का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो!"

३६

विजयी सेना ने मालवा की राजधानी मांडू और वहाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। ऊधमखाँ और मुल्ला पीर मुहम्मद ने दुर्ग के मैदान में डेरे डाल दिये। रूपमती भी बांदियों के साथ बंदी बनकर महल में पहुँच गई।

बाजबहादुर के पास पूर्वजों का जोड़ा हुआ धन था। सहस्त्रों हाथी-घोड़ों के अतिरिक्त सोना-चांदी और हीरे मोती इतने हाथ लगे कि ऊधमखाँ मस्त हो गया। नगर को सिपाहियों द्वारा लुटवाया और मुल्ला पीर मुहम्मद के कहने पर ऐसा हत्या-कांड रचाया कि चंगेजखाँ और हलाकूखाँ की याद ताज़ा हो गई।

ऊधमखाँ इतना धन पाकर स्वयं राजा बनने के स्वप्न देखने लगा। लूट-मार के धन से अकबर को कुछ भी न भेजा बल्कि स्वयं राज्य-क्षेत्र को सरदारों में बांट कर राज्य-शासन आरम्भ कर दिया।

ह बीमार ही थी और रातों में छिप-छिप कर रोती थी। एक ओर तो उसे
ज़बहादुर के बिछड़ने का दुख था, दूसरी ओर ऊधमखाँ का मन उसे अपनी
ार कलुषित दिखाई दे रहा था। वह खूब अनुमान लगा रही थी कि दासियों
रा नित्यदिन की कुशलता के संदेश पूछने का क्या अर्थ है और वह हृदय में
ुके लिये क्या भाव रखता है? महल की सब दासियाँ अब ऊधमखाँ की
सियाँ थीं। राजभवन की सब स्त्रियों में केवल एक गुलनार थी जिसे वह
पना समझती थी। उसके साथ बैठ-बैठ कर वह रोती थी।

एक रात जब वह अपनी चिन्ता में बैठी थी तो यह दासियाँ, जिन्हें उसके
म्मुख बात करने का भी साहस न था, ऊधमखाँ का प्रेम-सन्देश लेकर पहुँचीं,
ार समय के उतार-चढ़ाव को समझाते हुए ऊधमखाँ की बात मान जाने को
हने लगीं। रूपमती बड़े धैर्य से आँखें झुकाये बैठी रही। गुलनार अलग स्तम्भ
समय के उपहास पर सिर धुनती रही।

दासियाँ बात कर चुकीं, तो रूपमती ने मुस्कराते हुये उन पर दृष्टि
और अमानी को जो इस समय इनकी मुखिया बनी हुई थी, सम्बोधन
बोली—"तुम जानती हो कि मैं यहाँ एक नर्तकी बनकर आई थी, किन्तु
हारे उस समय के स्वामी ने अपनी कृपा-दृष्टि से मुझे रानी बना दिया। यद्यपि
ह अब यहाँ नहीं रहे, किन्तु उनकी अनुपस्थिति में जब तक भी जीवित हूँ मैं
पनी उसी पदवी पर रहना चाहती हूँ। मैं रानी थी और रानी ही रहूँगी।"

अमानी यद्यपि रूपमती के चुभते वाक्यों से कुछ झेंप-सी गई थी, किन्तु
नकी मुस्कान और बात के ढँग ने उसका साहस बढ़ाया। बोली—"सरकार
तो अब भी हम अपनी रानी ही समझते हैं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "देखो! अब मुझे सरकार कह कर सम्बोधित
न करो और यदि सचमुच कुछ आदर ही करना है तो बीबी कहो, जो पहले
हती थीं। मैं अपने आप को रानी केवल अपने लिये निजी रूप से समझती

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "यदि तुम मुझे अपनी रानी ही समझतीं तो यह देश लेकर आने का साहस मेरे सामने न करतीं।"

अमानी—"सरकार ! यह संदेश देने का साहस इसलिये हुआ कि हमारे र्तमान स्वामी ही यहाँ के महाराज हैं और सरकार वैसे ही मालवा की हारानी।"

रूपमती, अब तक तो अपना क्रोध रोके हुए थी, किन्तु अमानी के उस उद्दण्ड उत्तर से उसके धैर्य का बाँध टूट गया और वह क्रोध-भरी दृष्टि से अमानी ी ओर देखकर कड़क कर बोली—"अच्छा तुमने अपने वर्तमान स्वामी को ालवा का महाराज भी स्वीकार कर लिया है और इसी कारण तुम मुझे उसके हलू में बिठाने आई हो ? तुम और तुम्हारा यह कृतघ्न-स्वामी मुझे प्राप्त करने े लिये अपने स्वामी सम्राट अकबर के होते मालवा के राज्य के स्वप्न भी देख हा है ? जाओ ! मेरी आँखों से दूर हट जाओ। उस कामुक-पापी पशु से कह ो कि अपनी सीमा से आगे न बढ़े।"

अमानी और बाकी दासियाँ काँप गईं। अभिवादन को झुकीं और उलटे ाँव बाहर निकल गईं। रूपमती के व्यवहार से सब पर ओस सी पड़ गई। उन्हें कदापि यह आशा न थी कि रूपमती इतना कठोर उत्तर देगी। अपने ्वामी से द्रोह करने पर अन्तर भला-बुरा कह रहा था। साथ ही यह भय लगा हुआ था कि यदि बाजबहादुर फिर सफल होकर दुर्ग पर अधिकार कर बैठा तो ही की न रहेंगी। विस्मित थीं कि ऊधमखाँ को उत्तर दें तो क्या दें ?

आये। गुलनार हिचकियाँ लेकर रोने लगी। जर्रीन और फ़िरोज़ मुंह से तो कु
न कह सके पर रूपमती के चरणों में गिर पड़े और फूट-फूट कर रोये।

रूपमती व्याकुल हो गई। झुक कर उन्हें अपने हाथों से उठाया और हृ
को थामकर खड़ी हो गई। आँखें झुकाये खड़ी थी और आँसुओं की बाढ़ थी
उमड़ी चली आती थी। बात करना चाहती थी, किन्तु गला भर्राया हुआ थ
बोल न पाती थी। ज़र्रीन और फ़िरोज़ दोनों खड़े रो रहे थे। बड़ी कठिनाई
अपने को सँभाल कर उनसे बोली—"आज रात के लिये मेरी रक्षा का भा
तुम पर है......फिर......।" आगे कुछ कहना चाहती थी, किन्तु कह न सकी
ज़र्रीन और फ़िरोज़ ने मुँह से तो कुछ न कहा, किन्तु म्यान से तलवारें खींचक
सोंत लीं और चरणों पर झुक कर रोते हुए बाहर निकल गये।

इनके जाने के बाद रूपमती ने एक कटार स्वयं निकाली, दूसरी गुलनार व
दी। फिर दोनों ने भवन के चारों ओर के द्वार बन्द कर दिए।

वह रात रूपमती पर प्रलय की रात थी। वह समझ चुकी थी कि ऊधमख
अपने निश्चय से नहीं टलेगा। अपने कमरे में बैठकर रोई, बाज़बहादुर वे
शयन-गृह में लाकर रोई, जहाँ-जहाँ वह एक साथ बैठे थे, वहाँ-वहाँ रोई, महल
के कोने-कोने में पागलों के समान सिर टकराती फिरी और गुलनार छाया की
भाँति उनके पीछे-पीछे रोती हुई उसे थामती रही।

जब बहुत कुछ मन हल्का हो गया तो थककर छप्पर-खाट में गिर रही
कटार हाथ में लिए आँखें बन्द किए पड़ी थी और गुलनार पास बैठी रो रही
थी। एक दृष्टि उस पर थी और दूसरी उसके कटार वाले हाथ पर थी। गुलनार
ने उसके हाथ से कटार लेने को हाथ बढ़ाया कि उसने आँखें खोल दीं। बोली—
"क्या करती हो ?"

गुलनार—(हिचकियाँ लेते हुए) "कटार मुझे दे दो रूपा !"

रूपमती उठकर बैठ गई और खूब फूट-फूट कर रोई।

फिर बोली—"मुझे अब रूपा ही कहे जाना मेरी बहन ! इस शब्द से
प्रेम टपकता है। मैं चाचा-चाची की रूपा

वाँदनगर की रूपा थी। फिर कुछ दिनों तुम्हारी भी रूपा थी। क्या अच्छे थे वह दिन जब मैं केवल रूपा थी ? अब वह समय कभी न आयेगा।"

गुलनार—(रोते हुए) "अच्छा, लाओ ! कटार तुम मुझे दे दो !"

रूपमती—"तुम अपनी कटार लिये रहो। आज की रात यह अपनी रक्षा के लिये है। सन्तोष रखो, आत्महत्या के लिए नहीं।"

गुलनार को उसकी ओर से यही खटका था, वह दूर तो हो गया, किन्तु चीखें मार-मार कर रोने लगी। ज़र्रीन और फ़िरोज़ जो बाहर टहल रहे थे, घबरा कर दौड़े आये। ज़र्रीन ने स्वर पहचान कर गुलनार को पुकारना आरम्भ किया। रूपमती कटार हाथ में लिए छप्पर-खाट से उठी और स्वयं ज़र्रीन को दरवाज़ा खोलकर भीतर बुला कर बोली—"समझाओ इसे ज़र्रीन ! यह अपने प्राणों की शत्रु हुई बैठी है।"

ज़र्रीन के समझाने-बुझाने से गुलनार का मन जब कुछ संभल गया तो दोनों बाहर चले गये और रूपमती ने भीतर से फिर किवाड़ बन्द कर लिये।

दो तिहाई रात बीत चुकी थी। रोने-धोने के पश्चात दोनों के मन में कुछ ठहराव आ गया था। रूपमती अपनी छप्पर-खाट में तकिये के सहारे बैठ गई और कहने लगी—"लो बहन ! अब मेरी कुछ बातें सुन लो ? वह बातें जो आज तक तुम से न कीं और जिनके सुनने को तुम कई बार व्याकुल भी हुई। तुम्हें याद होगा कि पहले-पहल तुमने तो यह बातें उस समय पूछना चाहीं थीं, जब मेरे प्रियतम से मेरा बन्धन हुआ था, और उसके राजा होने पर मैंने चिन्ता प्रगट करते हुए कहा था कि मेरे मन में एक चोर छिपा है।"

गुलनार—"हाँ, मुझे सब याद है और तुमने यह भी कहा था कि अब इसके विवरण से मेरा मन कुछ शंकित-सा है।"

रूपमती—"हाँ, हाँ ! ठीक याद है तुम्हें। अब इस युद्ध पर जाने से पूर्व तुमने मुझे चिन्तित पाकर यही बात पूछी थी।।"

दूसरा भाग मैंने तुम्हें कभी नहीं सुनाया और न ही मेरा जी चाहता था कि मैं इसे सुनाऊँ। बल्कि, मन में सदा यही प्रार्थना करती थी कि यह समय कभी न आये। किन्तु भाग्य में लिखा कोई नहीं बदल सकता। वह आया और आकर रहा। मैं स्वप्न में देखा करती थी कि युद्ध हो रहा है और मैं अपने प्रियतम के संग तलवार हाथ में लिए, घोड़े पर सवार लड़ रही हूँ। वह बहुत चाहता है कि मैं रण-स्थल से टल जाऊँ, पर मैं नहीं मानती। यहाँ तक कि मेरा प्रियतम इस रेल-पेल में मुझ से बिछड़ जाता है और मैं लड़ती हुई बेसुध हो कर घोड़े से गिर पड़ती हूँ। यदि तुम रणस्थल में होतीं तो देखतीं कि यह घटनायें उसी प्रकार घटित हुई जैसे कि मैं देखा करती थी। फिर मैं सपने में देखा करती थी कि मैं एक दुर्ग में बन्द हूँ, और अपने प्रियतम के लिए रोती फिरती हूँ। एकाएक मेरे सामने एक ऐसी बला उत्पन्न होती है, जिसका सारा शरीर तो मानव का है, किन्तु मुख भेड़िये का। वह बला मुझ पर झपटती है, मैं चीखती चिल्लाती हूँ, किन्तु मेरी सहायता को कोई नहीं पहुँचता—यह मेरा स्वप्न का अन्तिम भाग मेरी-तुम्हारी आँखों के सामने है। आज दासियों को धिक्कारते हुए मैंने ऊधम को पशु इसलिए कहा कि मैं उसे वही भेड़िये के मुख वाला मानव समझती हूँ, जो मेरे स्वप्न का भयानक पात्र है। गुलनार! इस संसार में सब व्यक्ति वास्तव में मानव नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति मानव का शरीर रखते हुये भी पशुओं के गुण रखता है, तो वास्तव में वह पशु ही है। यद्यपि इस संसार में रहते हुये कोई व्यक्ति दोषों और भूलों से मुक्त नहीं, किन्तु इनके भी दो प्रकार होते हैं। मैं भी बहुत दोषी हूँ गुलनार! किन्तु भगवान का लाख-लाख धन्यवाद है कि प्रकृति ने इतना सम्मान देने पर भी मुझे ऐसे दोषों से मुक्त रखा, जो मेरी मानवता पर कलंक होते। मैं सच्चे मन से कहती हूँ कि मैं राजवैभव के लिये नहीं रोती, बल्कि उसके लिये रोती हूँ, जो मेरे मन का चैन है, उसके लिये रोती हूँ जिसकी पुजारिन मुझे प्रकृति ने उस समय बना दिया था, जब मैंने उसे एक आँख देखा भी न था। आह! गुलनार, मुझे फिर कहीं

चुग़रबेग़—"अमीरअली ने यह संदेश भेजा है कि वह आ
से भेंट करने के लिये आयेंगे।"

गुलनार—"बस! केवल यही संदेश है?"

चुग़रबेग़—"जी!"

गुलनार, मुर्झाई हुई वापस आई, किन्तु उसे संदेश कहने
न पड़ी इसलिये कि रूपमती स्वयं भीतर बैठी सुन रही थी।
स्वर में बोली—"कह दो कि हम एक पहर रात गये प्रतीक्षा क

गुलनार कहने को बाहर निकली तो उसने चुग़रबेग़ को प्रसन्
हुए देखा। वह इस उत्तर को स्वयं ही सुन चुका था।

चुग़रबेग़—(प्रसन्न होकर) "जी!"

गुलनार—"अच्छा! जा सकते हो।"

चुग़रबेग़ मुस्कुराता हुआ पलटा और इठलाता हुआ चला ग

गुलनार भीतर चली गई और चुपचाप रूपमती के पास
बैठ गई। रूपमती भी मौन बैठी सोच रही थी। बड़ी देर बा
गुलनार बोली—"रूपा! अब क्या होगा?"

रूपमती ने कुछ ठहर कर मुस्कुराते हुए उसकी ओर देखा
"चिन्ता न करो बहन! देखती रहो। बड़ी सरलता के साथ
निबट लूँगी और हाँ अमानी को बुलाकर आज्ञा देदो कि वह हम
साँझ होने से पहले सजाद किन्तु उन्हें सामने आने की अनुमति न
दासियों को आदेश दे दो कि श्रृङ्गार के लिये आ जायें।"

उधर जब चुग़रबेग़ ने ऊधमखाँ को यह सूचना सुनाई तो वह प्रसन्नता से उछल पड़ा और तुरन्त अमानी को बुला भेजा।

ऊधमखाँ—"अमानी ! हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं। यह सब तुम्हारे ही कारण है।"

अमानी— "दासी समझी नहीं, महाराज।"

ऊधमखाँ—"रूपमती सहमत हो गई है और आज रात वह हमारे स्वागत के लिये प्रतीक्षा करेगी।"

अमानी—(सोचकर) "महाराज ! वह नर्तकी है। सम्भव है, इसमें भी कोई धोखा हो, दासी अभी सन्तुष्ट नहीं।"

ऊधमखाँ—"क्या कहती हो अमानी ! अब उसकी रत्ती भर मजाल नहीं कि इधर से उधर हो।"

अमानी—"भगवान करे ऐसा ही हो महाराज ! किन्तु दासी उससे भली प्रकार परिचित है। वह इतनी गहरी है कि उसकी थाह पाना कठिन है। वह इतनी तीव्र बुद्धि की है कि बुद्धिमान से बुद्धिमान भी चकित रह जाता है। वह ऐसी परख रखती है कि बात कहने वाले की जबान खुलने से पहले ही उसका उद्देश्य पा जाती है। दासी यह सब कुछ अपने बरसों के अनुभव के आधार पर कह रही है।"

ऊधमखाँ—(हँस कर) "कुछ भी हो अमानी ? अब वह हमसे बच कर नहीं

ऊधमखाँ—"हाँ, हाँ, जाओ ! और अपना मन सन्तुष्ट करके हमें शीघ्र सूच

अमानी अभिवादन करके निकली ही थी कि फ़िरोज़ आता हुआ दिख
या। पास पहुँच कर फ़िरोज़ ने गुलनार की ओर से बुलाये जाने का सन्दे
या। अमानी उसके साथ सीधी गुलनार के पास पहुँची।

गुलनार— "अमानी ! रानी की आज्ञा है कि साँझ से पहले उनके शय
को सजा दिया जाये और दासियों को आदेश दिया जाये कि वह उनके शृङ्गा
लये उपस्थित हो जायें।"

यह सुनकर अमानी का मन खिल उठा, किन्तु उसने मुख से प्रसन्नता
होने दी और सीधी ऊधमखाँ के पास पहुँची।"

अमानी— (अभिवादन करके) "दासी महाराज को बधाई देती है।"

ऊधमखाँ—"हम तुम्हें निहाल कर देंगे अमानी। किन्तु यह तो बताओ वि
इतनी शीघ्र सन्तोष कैसे हुआ ?"

अमानी—"महाराज ! अभी-अभी मुझे शयन-गृह को सजाने की आज्ञ
ो है और साथ ही दूसरी दासियों को शृङ्गार के लिये बुलवाया गया है। अ
ी को पूर्ण विश्वास है महाराज।"

ऊधमखाँ प्रसन्न होकर हँस पड़ा और अमानी अभिवादन करके चली गई

अमानी दासियों के साथ शयन-गृह को सजाने में व्यस्त हो गई और रूप-
गुलनार को लेकर उत्सव भवन में जा बैठी। गाव तकिये से टेक लगाये मौन
रही। उसके मुख से किसी प्रकार की चिन्ता अथवा व्याकुलता प्रगट न होती
गुलनार सामने बैठी उसके मुख पर दृष्टि जमाये उसके विचारों का अनुमान
में खोई हुई थी।

रूपमती—"जर्रीन और फ़िरोज को भी बुला लो मैं कुछ बातें करना
ती हूँ।

गुलनार जर्रीन और फ़िरोज को बुला लाई। सामने पहुँच कर दोनों
भिवादन को झुके और मलिन मुख से, सादर दृष्टि झुका कर खडे हो गये।
पमती ने सस्नेह उनकी ओर देखा और विनम्र स्वर से बोली—

"आओ! जर्रीन, फ़िरोज! आगे बढ़ आओ!" दोनों कुछ पग और
गे बढ़ आये।

रूपमती—"गुलनार के पास बैठो!"

यह पहला अवसर था कि किसी दास तथा ख्वाजा-सरा को राजा या रानी
के सम्मुख बैठने की आज्ञा मिली हो। जर्रीन और फ़िरोज़ कांप गये और दृष्टि
झुका कर बैठ गये। कुछ देर उन्हें देखते रहने के पश्चात रूपमती बोली—"इस
समय पूरे राजदुर्ग में केवल तुम तीन व्यक्ति ऐसे हो, जिनसे मैं अंतिम समय
तक प्रसन्न रही। इसके लिए मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। हो सकता है, तुम्हें मेरे प्रति
अपनी सेवा-भाव का मूल्य न मिल सके, किन्तु विश्वास रखो भलाई फिर भलाई
है। दुःख की बात है कि मैं, इसी भवन में, इसी सिंहासन पर महाराज के

रानी बनकर बैठी थी, और सब राज-अधिकारियों ने मेरे प्रति श्रद्धा प्रगट की थी। उस दिन एक दूसरे से होड़ ले रहे थे और एक आज का दिन है कि सब फिर गये, सब बदल गये। यह परिवर्तन तो होनहार है, किन्तु हम मानव होने के नाते इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। दुख और सुख अनुभव किये बिना कोई उपाय नहीं। किन्तु प्रकृति बड़ी दयालु है। उसने हर दुख का उपाय भी उत्पन्न किया है और इन साँसारिक दुखों से मुक्ति केवल मृत्यु में है, जो देखने में बड़ी भयानक और दुखदायक है, किन्तु वास्तव में एक बड़ा वरदान है। जन-साधारण मृत्यु से डरते हैं, जिसका कारण केवल यह है कि वह अपने इस अस्थायी-जीवन में मोह-माया में फँस कर रह गये हैं। उनका जीवन केवल भौतिक-शरीर की आवश्यकताओं और वासनापूर्ति के लिए कार्य-शील रहता है। वह शरीर से, आत्मा की मुक्ति के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। भला यह जकड़ा-जकड़ा सहमा हुआ वन्दी-जीवन भी कोई जीवन है। वह लोग, जो मृत्यु के बाद के [illegible]वन को स्वीकार नहीं करते, वह एक सत्य से दूर हैं।"

"तुम देख रहे हो, जिस पशु-रूपी-मानव से मुझे पाला पड़ा है, मैं नहीं [illegible]नती कि उसके हाथों कौन से घाट उतरूँगी और इसलिए आशा नहीं कि [illegible]यतम के दर्शन प्राप्त हों। किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम सबको वह अवश्य ही मिलेंगे। जब भी मिलें तुम मेरी ओर से कह देना कि मैं आया करूँगी। मेरे राजा! मैं स्वप्न बनकर तुम्हारे पास आया करूँगी।" यह कहकर रूपमती फूट-फूट कर रोने लगी। ज़र्रीन, फ़िरोज़ और गुलनार भी रोते-रोते वेसुध हो गये।

रूपमती, साँझ से पहले ही नहा-धोकर सुगन्ध में डूबे अपने प्रिय, श्वेत
के वस्त्र पहने प्रासाद में आई। दासियाँ पहले से शृंगार का सामान लिए
ा में थीं। गर्व से सिर उठाये आई और सुनहरी कुर्सी पर बैठ गई, उसका
र कुन्दन के समान चमक रहा था और उसके गम्भीर मुख पर तेज झलक
था। गुलनार चकित हो उसे तक रही थी। दासियाँ उसका शृंगार करने
स्त थीं। रूपमती कभी-कभी गुलनार पर दृष्टि डालकर फिर नीचे देखने
ी। दासियाँ अपने कला-कौशल द्वारा उसे रत्न-जड़ित गहनों से सजा चुकीं
उसने राज-मुकट सिर पर पहिन लिया तो वह उठकर दर्पण के सामने
ा हो गई। बड़ी देर तक मौन खड़ी, अपने को दर्पण में निहारती रही। फिर
र कर दासियों को जाने का संकेत किया, वह अभिवादन को झुकीं और
हटाकर बाहर हो गईं।

फिर कुर्सी पर आकर बैठ गई, और मुस्कुराते हुए गुलनार की ओर देखकर
ी—"क्यों बहन! रूपा अब भी रानी ही लगती है ना?"

गुलनार ने स्नेह-दृष्टि उस पर डाली और बोली—"प्यारी रूपा। तुम पर
नार न्योछावर हो जाएगी। तुम रानी कब न थीं। तुम तो तब भी रानी
ती थीं, जब रानी बनी भी न थीं।"

रूपमती उनके प्यार भरे शब्दों से व्याकुल हो गई। मन भर आया, परन्तु
ने को सँभाला फिर मुस्कुराती हुई खड़ी होकर उससे लिपट गई और उसके
धे को चूमते बोली—"बड़ी बहन! प्यारी बहन..." आगे कुछ कहना
ही थी, किन्तु मन भर आया। और अपनी मनोदशा को छिपाने के लिए
कुराने लगी। फिर कुर्सी पर बैठ गई और साथ वाली कुर्सी पर गुलनार

बिठा लिया। गुलनार अत्यधिक चिंतित थी। वह यह न समझ
कि रूपमती इतनी शान्त क्यों है ! वह उसके स्वभाव से भली प्रका
थी। वह यह कभी सोच भी न सकती थी कि वह ऊधमखाँ की
सामने झुक जायेगी। वह जानना चाहती थी कि आखिर उर
क्या है।

गुलनार—"रूपा ! तुमने सवेरे कहा था कि ऊधमखाँ से बड़ी
निबट लूँगी।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "हाँ, यही कहा था।"

गुलनार—(दुखी मन से) "मैं सवेरे से अब तक सोचती और
रही, किन्तु न तो कुछ समझ सकी, न ही देख सकी कि तुम उससे कैसे
अब तो बता दो ?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "तुम्हारा सन्तोष नहीं हुआ मेरे कहने

गुलनार—"नहीं रूपा ! मुझे बता दो मैं पूछे बिना न रहूँगी ?"

रूपमती—"अच्छा, बता दूँगी, मुझे कुछ समय दो !"

गुलनार—"कितना ?"

रूपमती—"एक पहर रात का।"

गुलनार—"अभी क्यों नहीं बता देतीं ?"

रूपमती—(सोचकर) "इतनी शीघ्रता क्या। बहन, बता दूँगी।

गुलनार चुप हो गई। किन्तु उसे चैन न था। साँझ हो चली थी
ने उठकर डूबते सूरज की ओर देखा और गुलनार की ओर देखकर
"फ़िरोज़ को बुलाओ ताकि फ़ानूस रौशन कर दे !"

गुलनार उठ कर बाहर गई और फ़िरोज़ भीतर आकर फ़ा
करने लगा।

बाहर अमानी और दूसरी दासियाँ खड़ीं थीं। उन्होंने गुलनार
की कि उन्हें भी महारानी के दर्शन की आज्ञा मिलनी चाहिए। रूपम
स्वीकार न किया और त्यौरी पर बल डाल कर चुप हो गई।

जगमगा रहा था। रूपमती ने गुलनार की ओर देखा और बोली—"बहन! हम-तुम रात-भर की जागी हुई हैं और दिन भी आँखों में कट गया। दो घड़ी विश्राम करना चाहती हूँ। बाहर सब से कह दो कि किसी प्रकार की आहट न होने पाये।"

यह कह कर उठी और फूलों से सजी छप्पर-खाट में जा बैठी। गुलनार से पर्दे छुड़वा दिये और दुपट्टा तान कर लेट गई।

४१

ऊधमखाँ क्षण-क्षण करके घड़ियाँ काट रहा था। प्रतीक्षा में था कि कब पहर रात हो कि वह रूपमती के पास पहुँचे।

अमानी की भेजी हुई दासियाँ पल-पल की सूचनायें पहुँचा रही थीं। अब रानी नहाकर निकली, अब दासियाँ शृंगार कर रही हैं, अब रानी गुलनार से बैठी बातें कर रही है। उसके लिए प्रतीक्षा की घड़ियाँ पहाड़ बन गईं और अभी पहर रात भी न हुई थी कि वह बन-संवर कर चुग़रबेग के साथ उत्साह-पूर्वक रूपमती के शयन-गृह की ओर चल दिया।

शयन-गृह के बाहर आंगन में सब दासियाँ, अमानी के साथ खड़ी थीं। सर्दार को आता देखकर सब सम्मान में झुक गईं। वह एक विजयी के समान मुस्कराता हुआ उनकी ओर बढ़ा और चुग़रबेग ने मुट्ठियाँ भर-भरकर सबको अशर्फियाँ दीं। गुलनार दोनों हाथों से अपना हृदय थामे, सबसे अलग एक-स्तम्भ के पीछे खड़ी थर-थर कांप रही थी।

ऊधमखाँ का विचार था कि रूपमती उसके स्वागत के लिए बाहर

मिलेगी। उसे न पाकर बहुत झल्लाया और नाक-भौं चढ़ाकर अमान
"अमानी ! हमारे आने की सूचना नहीं दी गई थी।"

अमानी—"महाराज ! महारानी विश्राम कर रही हैं। साँझ स
पास किसी को जाने की आज्ञा नहीं है।"

यह कहकर आगे बढ़ी और शयन-गृह का पर्दा पटाकर खड़ी हो ग
ने प्रसन्न-मुख से भीतर प्रवेश किया। छप्पर-खाट का पर्दा हटाकर
काफ़ूर की ज्योति के प्रकाश में रूपमती के सौंदर्य को निहारता
मुस्कुराते हुए उसकी ठोड़ी को छूकर उसे जगाने लगा। जगाता
रहा, किन्तु जागे कौन ? वह तो विष खाकर सोई थी और बात के
दिये थे। ऊधमखाँ के माथे पर कालिख का ऐसा टीका लगा गई कि
से भी मुँह धोने पर न मिटेगा।

निर्लज्ज ऊधमखाँ सिर झुकाये बाहर निकल आया। दासिय
भीतर पहुँचीं। म्लान मुख पर फटी आँखों से दाँतों में उँगली दाबे,
सोई हुई रानी को देख रही थीं। गुलनार ग़श खाकर धरती पर बेसुध

अकबर ने ऊधमखाँ की उद्दण्डता की खबरें पाकर, उसे पदच्युत करके, आग
लिया। जो कुछ धन-दौलत उसने समेटी थी, सब उगलवा ली। फिर कुछ
दिन बाद एक अमीर की हत्या के दोष में उसे महल के बुर्ज से गिरवा क
ा दिया।

माँडू में मुल्ला पीर मुहम्मद का राज था। बाजबहादुर को गुप्तचरों द्वारा
सूचना पहुँच चुकी थी कि रूपमती घायल होने के पश्चात् माँडू के दुर्ग में
त चुकी है। इधर-उधर से सेना एकत्र करके वह फिर माँडू की ओर चला।
मुल्ला पीर मुहम्मद, अपना सैन्य-दल लेकर मुकाबले को आया। बाज़-
दुर चोट खाकर बिफरा हुआ तो था ही, बाज़ की भाँति झपटा। जिधर
टता था, सफ़ाया कर देता था। मुल्ला की सेना में खलबली मच गई और
भाग खड़ी हुई। नर्वदा नदी सामने आई। मुल्ला ने घोड़ा पानी में डाल
ा। सेना भी पीछे भागी आती थी। घबराहट में, एक लदे हुए ऊँट का
का लगा और वह घोड़े से गिर कर पानी में गिर पड़ा। नर्वदा नदी उसके
ए काल हो गई और इस प्रकार वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

बाजबहादुर विजयी होकर दुर्ग में आया तो रूपमती का दुख भरा अन्त सुन
र तड़प गया। रोता था और सिर पटकता था। अमानी और दूसरी राजद्रोही
मियों का अपने हाथ से वध कर डाला और जोगी बन कर निकल गया।

अकबर को कुछ समय बाद इसकी सूचना मिली तो ढुंढ़वा कर उसे अपने
स बुलाया और अपने विशेष अमीरों में उसे सम्मिलित कर लिया।

बाजबहादुर जब तक जिया, रूपमती निरन्तर स्वप्न में उसके पास आती
ी, निरन्तर आती रही।

रवीन्द्र

● सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

विश्व-कवि केवल बंगला-साहित्य के ही युग-प्रवर्तक, पुरोध
एवं ऋत्विक् नहीं थे अपितु विश्व-साहित्य को भी एक अभिन
प्रकार का दान देने वाले थे। आपकी इस साहित्य-सेवा ने औ
महान् शिक्षाविद्, सिद्ध दार्शनिक, जन-सेवक, अन्तरर्राष्ट्रीय रू
ने इन्हें पुरुष से विश्व-मानव बना दिया। इसके वास्तविक दर्श
होते हैं 'रवीन्द्र : सुभाषित और सूक्तियाँ' में ही।

ये सुभाषित और सूक्तियाँ उनकी प्रतिभा, गहन चिन्तन औ

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़
दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

प्रेमचन्द

• सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

हिन्दी-जगत् स्रष्टा उपन्यास-सम्राट् साम्यवाद के सन्देश-
, भारत के गोर्की, साहित्य के गाँधी, ग्राम्य-जीवन के अनूठे
कार और आदर्श कहानीकार, प्रेमचन्दजी के विचार-गगन
मटिमाते तारागणों के समान असंख्य और सागर के समान
हैं।

लगभग एक दर्जन उपन्यास, तीन सौ कहानियाँ, तीन नाटक
अनेक अनुवाद तथा जीवनियाँ एवं निबन्धों में लेखक की
नायें, विचार और उद्गार यत्र-तत्र कोने-कोने में छिपे-छिपे
ते हैं। उनको उक्त स्थानों से निकालकर एक स्थान पर
लन करना ही पुस्तक का ध्येय है।

जीवन की विविध झाँकियों में प्रेमचन्द ने पदार्पण किया है,
सका मूर्तरूप उनके ये सुभाषित और सूक्तियां हैं।

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़
दरीबा कलां, दिल्ली-६

निराला

सुभाषित और सूक्तियां

संकुलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार महाकवि
हित्य के सभी अंगों को अपनी रचनाओं से विभूषित।
उनका अध्ययन बड़ा ही गहन और उसकी अभिव्यक्ति
ावपूर्ण हुई है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर वि
विचार और सूक्तियों का संकलन इस पुस्तक के रू
ा जगत को भेंट है। विश्वास के साथ कहा जा सकत
निराला-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक रुचेगी और
चित आदर प्राप्त होगा।

(आगामी आकर्षण

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलां, दिल्ली।